इति कृत्वा प्रतिज्ञां स गृहीत्वा परशुं ययौ।
माहिष्मतीं पुरीं प्राप्य कार्तवीर्यमथाह्वयत्॥ ३३

युद्धार्थमागतः सोऽथ अनेकाक्षौहिणीयुतः।
तयोर्युद्धमभूत्तत्र भैरवं लोमहर्षणम्॥ ३४

पिशिताशिजनानन्दं शस्त्रास्त्रशतसंकुलम्।
ततः परशुरामोऽभून्महाबलपराक्रमः॥ ३५

परं ज्योतिरचिन्त्यात्मा विष्णुः कारणमूर्तिमान्।
कार्तवीर्यबलं सर्वमनेकैः क्षत्रियैः सह॥ ३६

हत्वा निपात्य भूमौ तु परमाद्भुतविक्रमः।
कार्तवीर्यस्य बाहूनां वनं चिच्छेद रोषवान्।
छिन्ने बाहुवने तस्य शिरश्चिच्छेद भार्गवः॥ ३७

विष्णुहस्ताद्वधं प्राप्य चक्रवर्ती स पार्थिवः।
दिव्यरूपधरः श्रीमान् दिव्यगन्धानुलेपनः॥ ३८

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकमवाप्तवान्।
क्रोधात्परशुरामोऽपि महाबलपराक्रमः॥ ३९

त्रिस्सप्तकृत्वो भूम्यां वै पार्थिवान्निजघान सः।
क्षत्रियाणां वधात्तेन भूमेर्भारोऽवतारितः॥ ४०

भूमिश्च सकला दत्ता कश्यपाय महात्मने।
इत्येष जामदग्न्याख्यः प्रादुर्भावो मयोदितः॥ ४१

यश्च तच्छृणुयाद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४२

अवतीर्य भूमौ हरिरेष साक्षात्
त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपान्निहत्य सः।
क्षात्रं च तेजो प्रविभज्य राजन्
रामः स्थितोऽद्यापि गिरौ महेन्द्रे॥ ४३

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके फरसा लेकर वे वहाँसे चल दिये और माहिष्मती पुरीमें जाकर उन्होंने राजा कार्तवीर्य अर्जुनको ललकारा। तब वह अनेक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धके लिये आया। वहाँ उन दोनोंमें महाभयानक रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ, जो सैकड़ों अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे व्याप्त तथा मांस खानेवाले प्राणियोंको आनन्द देनेवाला था। उस समय परशुरामजी अपनेमें अचिन्त्यस्वरूप, परम ज्योतिर्मय, कारणमूर्ति भगवान् विष्णुकी भावना करके महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने परम आश्चर्यमय पौरुष प्रकट करते हुए कार्तवीर्यकी असंख्य क्षत्रियोंसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको मारकर भूमिपर गिरा दिया और रोषसे भरकर कार्तवीर्यकी समस्त भुजाएँ काट डालीं। उसके बाहुवनका उच्छेद हो जानेपर भृगुनन्दन परशुरामने उसका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया॥ ३३—३७॥

इस प्रकार वह चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य श्रीभगवान् विष्णुके हाथसे वधको प्राप्त होकर दिव्यरूप धारण करके, श्रीसम्पन्न एवं दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त होकर, दिव्य विमानपर आरूढ़ हो, विष्णुधामको प्राप्त हुआ। फिर महान् बल और पराक्रमवाले परशुरामजीने भी इस पृथ्वीके क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार किया। इस प्रकार क्षत्रियोंका वध करके उन्होंने भूमिका भार उतारा और सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको दान कर दी॥ ३८—४०½॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह 'जामदग्न्य' (परशुराम) नामक अवतारका वर्णन किया। जो भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! इस तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके बाद ये साक्षात् भगवान् विष्णुस्वरूप परशुरामजी इक्कीस बार क्षत्रियोंको मारकर, क्षत्रियतेजको छिन्न-भिन्न करके आज भी महेन्द्र पर्वतपर विराजमान हैं॥ ४१—४३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे परशुरामप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'परशुरामावतार'नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामावतारकी कथा—श्रीरामके जन्मसे लेकर विवाहतकके चरित्र

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम्।
निहतो रावणो येन सगणो देवकण्टकः॥ १

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—राजन्! अब मैं भगवान् विष्णुके उस शुभ अवतारका वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप रावण अपने गणोंसहित मारा गया। तुम [ध्यान देकर] सुनो॥ १॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्योऽभून्महामुनिः।
तस्य वै विश्रवा नाम पुत्रोऽभूत्तस्य राक्षसः॥ २
तस्माज्जातो महावीरो रावणो लोकरावणः।
तपसा महता युक्तः स तु लोकानुपाद्रवत्॥ ३
सेन्द्रा देवा जितास्तेन गन्धर्वाः किंनरास्तथा।
यक्षाश्च दानवाश्चैव तेन राजन् विनिर्जिताः॥ ४
स्त्रियश्चैव सुरूपिण्यो हृतास्तेन दुरात्मना।
देवादीनां नृपश्रेष्ठ रत्नानि विविधानि च॥ ५
रणे कुबेरं निर्जित्य रावणो बलदर्पितः।
तत्पुरीं जगृहे लङ्कां विमानं चापि पुष्पकम्॥ ६
तस्यां पुर्यां दशग्रीवो रक्षसामधिपोऽभवत्।
पुत्राश्च बहवस्तस्य बभूवुरमितौजसः॥ ७
राक्षसाश्च तमाश्रित्य महाबलपराक्रमाः।
अनेककोटयो राजन् लङ्कायां निवसन्ति ये॥ ८
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च विद्याधरगणानपि।
यक्षांश्चैव ततः सर्वे घातयन्ति दिवानिशम्॥ ९
संत्रस्तं तद्भयादेव जगदासीच्चराचरम्।
दुःखाभिभूतमत्यर्थं सम्बभूव नराधिप॥ १०
एतस्मिन्नेव काले तु देवाः सेन्द्रा महर्षयः।
सिद्धा विद्याधराश्चैव गन्धर्वाः किंनरास्तथा॥ ११
गुह्यका भुजगा यक्षा ये चान्ये स्वर्गवासिनः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा शङ्करं च नराधिप॥ १२
ते ययुर्हतविक्रान्ताः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्।
तत्राराध्य हरिं देवास्तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा॥ १३
ब्रह्मा च विष्णुमाराध्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा वासुदेवमथास्तुवत्॥ १४

ब्रह्मोवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नागपर्यङ्कशायिने।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे॥ १५
नमस्ते योगनिद्राय योगान्तर्भावताय च।
तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ १६

ब्रह्माजीके मानस पुत्र जो महामुनि पुलस्त्यजी हैं, उनके 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ। विश्रवाका पुत्र राक्षस रावण हुआ। समस्त लोकोंको रुलानेवाला महावीर रावण विश्रवासे ही उत्पन्न हुआ था। वह महान् तपसे युक्त होकर समस्त लोकोंपर धावा करने लगा। राजन्! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किंनरोंको जीत लिया तथा यक्षों और दानवोंको भी अपने वशीभूत कर लिया। नृपश्रेष्ठ! उस दुरात्माने देवता आदिकी सुन्दरी स्त्रियाँ और नाना प्रकारके रत्न भी हर लिये। बलाभिमानी रावणने युद्धमें कुबेरको जीतकर उनकी पुरी लङ्का और पुष्पक-विमानपर भी अधिकार जमा लिया॥ २—६॥

उस लङ्कापुरीमें दशमुख रावण राक्षसोंका राजा हुआ। उसके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपरिमित बलसे सम्पन्न थे। राजन्! लङ्कामें जो कई करोड़ महाबली और पराक्रमी राक्षस निवास करते थे, वे सभी रावणका सहारा लेकर देवता, पितर, मनुष्य, विद्याधर और यक्षोंका दिन-रात संहार किया करते थे। नराधिप! समस्त चराचर जगत् उसके भयसे भीत और अत्यन्त दुःखी हो गया था॥ ७—१०॥

नरेश! इसी समय जिनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया था, वे इन्द्रसहित समस्त देवता, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंनर, गुह्यक, सर्प, यक्ष तथा जो अन्य स्वर्गवासी थे, वे ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके क्षीरसागरके उत्तम तटपर गये। वहाँ उस समय देवतालोग भगवान्‌की आराधना करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर ब्रह्माजीने गन्ध-पुष्प आदि सुन्दर उपचारोंद्वारा भगवान् वासुदेव विष्णुकी आराधना की और हाथ जोड़, प्रणाम करके वे उनकी स्तुति करने लगे॥ ११—१४॥

ब्रह्माजी बोले—जो क्षीरसागरमें निवास करते हैं, सर्पकी शय्यापर सोते हैं, जिनके दिव्य चरण भगवती श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलोंद्वारा सहलाये जाते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योग ही जिनकी निद्रा है, योगके द्वारा अन्तःकरणमें जिनका ध्यान किया जाता है और जो गरुडजीके ऊपर आसीन होते हैं, उन आप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है।

नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टमात्राय शार्ङ्गिणे।
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय विष्णवे॥ १७

भक्तार्चितसुपादाय नमो योगप्रियाय वै।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः॥ १८

सुकेशाय सुनेत्राय सुललाटाय चक्रिणे।
सुवक्त्राय सुकर्णाय श्रीधराय नमो नमः॥ १९

सुवक्षसे सुनाभाय पद्मनाभाय वै नमः।
सुभ्रुवे चारुदेहाय चारुदन्ताय शार्ङ्गिणे॥ २०

चारुजङ्घाय दिव्याय केशवाय नमो नमः।
सुनखाय सुशान्ताय सुविद्याय गदाभृते॥ २१

धर्मप्रियाय देवाय वामनाय नमो नमः।
असुरघ्नाय चोग्राय रक्षोघ्नाय नमो नमः॥ २२

देवानामार्तिनाशाय भीमकर्मकृते नमः।
नमस्ते लोकनाथाय रावणान्तकृते नमः॥ २३

मार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो हृषीकेशस्तुतोष परमेष्ठिना।
स्वरूपं दर्शयित्वा तु पितामहमुवाच ह॥ २४

किमर्थं तु सुरैः सार्धमागतस्त्वं पितामह।
यत्कार्यं ब्रूहि मे ब्रह्मन् यदर्थं संस्तुतस्त्वया॥ २५

इत्युक्तो देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
सर्वदेवगणैः सार्धं ब्रह्मा प्राह जनार्दनम्॥ २६

ब्रह्मोवाच

नाशितं तु जगत्सर्वं रावणेन दुरात्मना।
सेन्द्राः पराजितास्तेन बहुशो रक्षसा विभो॥ २७

राक्षसैर्भक्षिता मर्त्या यज्ञाश्चापि विदूषिताः।
देवकन्या हृतास्तेन बलाच्छतसहस्रशः॥ २८

त्वामृते पुण्डरीकाक्ष रावणस्य वधं प्रति।
न समर्था यतो देवास्त्वमतस्तद्वधं कुरु॥ २९

क्षीरसागरकी लहरें जिनके शरीरका स्पर्श करती हैं, जो 'शार्ङ्ग' नामक धनुष धारण करते हैं, जिनके चरण कमलके समान हैं तथा जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके सुन्दर चरण भक्तोंद्वारा पूजित हैं, जिन्हें योग प्रिय है तथा जिनके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको बारंबार नमस्कार है। जिनके केश, नेत्र, ललाट, मुख और कान बहुत ही सुन्दर हैं, उन चक्रपाणि भगवान् श्रीधरको प्रणाम है। जिनके वक्षःस्थल और नाभि मनोहर हैं, उन भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है। जिनकी भौंहें सुन्दर, शरीर मनोहर और दाँत उज्ज्वल हैं,उन भगवान् शार्ङ्गधन्वाको प्रणाम है। रुचिर पिंडलियोंवाले दिव्यरूपधारी भगवान् केशवको नमस्कार है। जो सुन्दर नखोंवाले, परमशान्त और सद्विद्याओंके आश्रय हैं, उन भगवान् गदाधरको नमस्कार है। धर्मप्रिय भगवान् वामनको बारंबार प्रणाम है। असुर और राक्षसोंके हन्ता उग्र (नृसिंह)-रूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। देवताओंकी पीड़ा हरनेके लिये भयंकर कर्म करनेवाले तथा रावणके संहारक आप भगवान् जगन्नाथको प्रणाम है॥ १५—२३॥

मार्कण्डेयजी कहते है—ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् हृषीकेश प्रसन्न हो गये और अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाकर वे भगवान् ब्रह्माजीसे बोले—'पितामह! तुम देवताओंके साथ किसलिये यहाँ आये हो? ब्रह्मन्! जो कार्य आ पड़ा हो और जिसके लिये तुमने मेरी स्तुति की है, वह बताओ।' समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर सम्पूर्ण देवगणोंके साथ विराजमान ब्रह्माजीने उन जनार्दनसे कहा॥ २४—२६॥

ब्रह्माजी बोले—विभो! दुरात्मा रावणने समस्त जगत्‌में भीषण संहार मचा रखा है। उस राक्षसने इन्द्रसहित देवताओंको कई बार परास्त किया है। रावणके पार्श्ववर्ती राक्षसोंने असंख्य मनुष्योंको खा लिया और उनके यज्ञोंको दूषित कर दिया है। स्वयं रावणने सैकड़ों-हजारों देवकन्याओंका अपहरण किया है। कमलनयन! चूँकि आपको छोड़कर दूसरे देवता रावणका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः आप ही उसका वध करें॥ २७—२९॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् यद्वदामि हितं वचः॥ ३०

सूर्यवंशोद्भवः श्रीमान् राजाऽऽसीद्भुवि वीर्यवान्।
नाम्ना दशरथख्यातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम्॥ ३१

रावणस्य वधार्थाय चतुर्धांशेन सत्तम।
स्वांशैर्वानररूपेण सकला देवतागणाः॥ ३२

वतार्यन्तां विश्वकर्तः स्यादेवं रावणक्षयः।
इत्युक्तो देवदेवेन ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३३

देवाश्च ते प्रणम्याथ मेरुपृष्ठं तदा ययुः।
स्वांशैर्वानररूपेण अवतेरुश्च भूतले॥ ३४

अथापुत्रो दशरथो मुनिभिर्वेदपारगैः।
इष्टिं तु कारयामास पुत्रप्राप्तिकरीं नृपः॥ ३५

ततः सौवर्णपात्रस्थं हविरादाय पायसम्।
वह्निः कुण्डात् समुत्तस्थौ नूनं देवेन नोदितः॥ ३६

आदाय मुनयो मन्त्राच्चक्रुः पिण्डद्वयं शुभम्।
दत्ते कौशल्यकैकेय्योर्द्वे पिण्डे मन्त्रमन्त्रिते॥ ३७

ते पिण्डप्राशने काले सुमित्राया महामते।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु सुभागिन्याः प्रयच्छतः॥ ३८

ततस्ताः प्राशयामासू राजपत्न्यो यथाविधि।
पिण्डान् देवकृतान् प्राश्य प्रापुर्गर्भाननिन्दितान्॥ ३९

एवं विष्णुर्दशरथाज्जातस्तत्पत्निषु त्रिषु।
स्वांशैर्लोकहितायैव चतुर्धा जगतीपते॥ ४०

रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च।
जातकर्मादिकं प्राप्य संस्कारं मुनिसंस्कृतम्॥ ४१

मन्त्रपिण्डवशाद्योगं प्राप्य चेरुर्यथार्भकाः।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव सह नित्यं विचेरतुः॥ ४२

जन्मादिकृतसंस्कारौ पितुः प्रीतिकरौ नृप।
ववृधाते महावीर्यौ श्रुतिशब्दातिलक्षणौ॥ ४३

भरतः कैकयो राजन् भ्रात्रा सह गृहेऽवसत्।
वेदशास्त्राणि बुबुधे शस्त्रशास्त्रं नृपोत्तम॥ ४४

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णु उनसे यों बोले—'ब्रह्मन्! मैं तुम लोगोंके हितके लिये जो बात कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। पृथ्वीपर सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीमान् दशरथ नामसे प्रसिद्ध जो पराक्रमी राजा हैं, मैं उन्हींका पुत्र होऊँगा। सत्तम! रावणका वध करनेके लिये मैं अंशतः चार स्वरूपोंमें प्रकट होऊँगा। विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी! आप सभी देवताओंको आदेश दें कि वे अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हों। इस प्रकार करनेसे ही रावणका संहार होगा।' देवदेव भगवान्‌के यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी तथा अन्य देवता उनको प्रणाम करके मेरुशिखरपर चले गये और पृथ्वीतलपर अपने-अपने अंशसे वानररूपमें अवतीर्ण हुए॥ ३०—३४॥

तदनन्तर पुत्रहीन राजा दशरथने वेदके पारगामी मुनियोंद्वारा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले 'पुत्रेष्टि' नामक यज्ञका अनुष्ठान कराया। तब भगवान्‌की प्रेरणासे अग्निदेव सुवर्णपात्रमें रखी हुई होमकी खीर हाथमें लिये कुण्डसे प्रकट हुए। मुनियोंने वह खीर ले ली और मन्त्र पढ़ते हुए उसके दो सुन्दर पिण्ड बनाये। उन्हें मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उन दोनों पिण्डोंको कौसल्या तथा कैकेयीके हाथमें दे दिया। महामते! पिण्ड-भोजनके समय उन दोनों रानियोंने दोनों पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा निकालकर सौभाग्यवती सुमित्राको दे दिया। फिर उन तीनों रानियोंने विधिपूर्वक उन क्षीरपिण्डोंका भोजन किया। उन देवनिर्मित पिण्डोंका भक्षण करनेके कारण उन सभी रानियोंने उत्तम गर्भ धारण किये॥ ३५—३९॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार भगवान् विष्णु लोकहितके लिये ही राजा दशरथसे उनकी तीनों रानियोंके गर्भसे अपने चार अंशोंद्वारा वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार रूप धारण करके प्रकट हुए। मुनियोंद्वारा जातकर्मादि संस्कार हो जानेपर वे मन्त्रयुक्त पिण्डके अनुसार दो-दो एक साथ रहते हुए सामान्य बालकोंकी भाँति विचरने लगे। इनमें राम और लक्ष्मण सदा एक साथ रहते थे। नरपाल! जातकर्मादि संस्कारोंसे सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई पिताकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्षण अश्रुतपूर्व एवं वर्णनातीत थे। अथवा वे वेद और व्याकरणादि शास्त्रोंमें पारंगत होनेके शुभलक्षणसे सुशोभित थे। राजन्! कैकेयीनन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्नके साथ प्रायः घरपर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेदशास्त्र और अस्त्रविद्या भी सीख ली थी॥ ४०—४४॥

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्रो महातपाः।
यागेन यष्टुमारेभे विधिना मधुसूदनम्॥ ४५

स तु विघ्नेन यागोऽभूद्राक्षसैर्बहुशः पुरा।
नेतुं स यागरक्षार्थं सम्प्राप्तो रामलक्ष्मणौ॥ ४६

विश्वामित्रो नृपश्रेष्ठ तत्पितुर्मन्दिरं शुभम्।
दशरथस्तु तं दृष्ट्वा प्रत्युत्थाय महामतिः॥ ४७

अर्घ्यपाद्यादि विधिना विश्वामित्रमपूजयत्।
स पूजितो मुनिः प्राह राजानं राजसंनिधौ॥ ४८

शृणु राजन् दशरथ यदर्थमहमागतः।
तत्कार्यं नृपशार्दूल कथयामि तवाग्रतः॥ ४९

राक्षसैर्नाशितो यागो बहुशो मे दुरासदैः।
यज्ञस्य रक्षणार्थं मे देहि त्वं रामलक्ष्मणौ॥ ५०

राजा दशरथः श्रुत्वा विश्वामित्रवचो नृप।
विषण्णवदनो भूत्वा विश्वामित्रमुवाच ह॥ ५१

बालाभ्यां मम पुत्राभ्यां किं ते कार्यं भविष्यति।
अहं त्वया सहागत्य शक्त्या रक्षामि ते मखम्॥ ५२

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरब्रवीत्।
रामोऽपि शक्नुते नूनं सर्वान्नाशयितुं नृप॥ ५३

रामेणैव हि ते शक्या न त्वया राक्षसा नृप।
अतो मे देहि रामं च न चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ ५४

इत्युक्तो मुनिना तेन विश्वामित्रेण धीमता।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं राजा मुनिवर्यमुवाच ह॥ ५५

यद्ब्रवीमि मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नस्त्वं निबोध मे।
राजीवलोचनं राममहं दास्ये सहानुजम्॥ ५६

किं त्वस्य जननी ब्रह्मन् अदृष्ट्वैनं मरिष्यति।
अतोऽहं चतुरङ्गेण बलेन सहितो मुने॥ ५७

आगत्य राक्षसान् हन्मीत्येवं मे मनसि स्थितम्।

इन्हीं दिनों महातपस्वी विश्वामित्रजीने यज्ञविधिसे भगवान् मधुसूदनका यजन आरम्भ किया। परंतु पहले उस यज्ञमें बहुत बार राक्षसोंद्वारा विघ्न डाला गया था, नृपश्रेष्ठ! इसलिये इस बार विश्वामित्रजी यज्ञकी रक्षाके लिये राम तथा लक्ष्मणको ले जानेके निमित्त उनके पिताके सुन्दर महलमें आये। महाबुद्धिमान् दशरथजी उन्हें देखकर उठ खड़े हुए और अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंद्वारा उन्होंने विधिवत् उनकी पूजा की। इस प्रकार उनके द्वारा सम्मानित हो, मुनिने अन्य राजाओंके निकट विराजमान राजा दशरथसे कहा—'राजसिंह महाराज दशरथ! सुनो—मैं जिस कार्यके लिये आया हूँ, वह तुम्हारे सामने निवेदन करता हूँ। मेरे यज्ञको दुर्धर्ष राक्षसोंने अनेक बार नष्ट किया है; अतः उसकी रक्षाके लिये तुम राम और लक्ष्मणको मुझे दे दो'॥ ४५—५०॥

नरेश्वर! विश्वामित्रजीकी बात सुननेपर राजा दशरथ-के मुखपर विषाद छा गया। वे उनसे बोले—'भगवन्! मेरे ये दोनों पुत्र अभी बालक हैं। इनसे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? मैं स्वयं आपके साथ चलकर यथाशक्ति यज्ञकी रक्षा करूँगा।' राजाकी बात सुनकर मुनि उनसे बोले—'नरपाल! राम भी उन सब राक्षसोंका नाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। सच तो यह है कि रामके द्वारा ही वे राक्षस मारे जा सकते हैं, तुम्हारे द्वारा नहीं; अतः राजन्! तुम्हें रामको ही मुझे दे देना चाहिये और किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये'॥ ५१—५४॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रमुनिके द्वारा यों कहे जानेपर राजा क्षणभरके लिये चुप हो गये और फिर उन मुनीश्वरसे बोले—'मुनिश्रेष्ठ! मैं जो कह रहा हूँ, उसे आप प्रसन्नतापूर्वक सुनें। मैं कमललोचन रामको लक्ष्मणके सहित आपको दे तो दूँगा, परंतु ब्रह्मन्! इनकी माता इन्हें देखे बिना मर जायगी। इसलिये मुने! मेरा ऐसा विचार है कि मैं स्वयं ही चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चलकर सब राक्षसोंका वध करूँ'॥ ५५—५७½॥

विश्वामित्रः पुनः प्राह राजानममितौजसम्॥ ५८

नाज्ञो रामो नृपश्रेष्ठ स सर्वज्ञः समः क्षमः।
शेषनारायणावेतौ तव पुत्रौ न संशयः॥ ५९

दुष्टानां निग्रहार्थाय शिष्टानां पालनाय च।
अवतीर्णौ न संदेहो गृहे तव नराधिप॥ ६०

न मात्रा न त्वया राजन् शोकः कार्योऽत्र चाण्वपि।
निःक्षेपे च महाराज अर्पयिष्यामि ते सुतौ॥ ६१

इत्युक्तो दशरथस्तेन विश्वामित्रेण धीमता।
तच्छापभीतो मनसा नीयतामित्यभाषत॥ ६२

कृच्छ्रात्पित्रा विनिर्मुक्तं राममादाय सानुजम्।
ततः सिद्धाश्रमं राजन् सम्प्रतस्थे स कौशिकः॥ ६३

तं प्रस्थितमथालोक्य राजा दशरथस्तदा।
अनुव्रज्याब्रवीदेतद् वचो दशरथस्तदा॥ ६४

अपुत्रोऽहं पुरा ब्रह्मन् बहुभिः काम्यकर्मभिः।
मुनिप्रसादादधुना पुत्रवानस्मि सत्तम॥ ६५

मनसा तद्वियोगं तु न शक्ष्यामि विशेषतः।
त्वमेव जानासि मुने नीत्वा शीघ्रं प्रयच्छ मे॥ ६६

इत्येवमुक्तो राजानं विश्वामित्रोऽब्रवीत्पुनः।
समाप्तयज्ञश्च पुनर्नेष्ये रामं च लक्ष्मणम्॥ ६७

सत्यपूर्वं तु दास्यामि न चिन्तां कर्तुमर्हसि।
इत्युक्तः प्रेषयामास रामं लक्ष्मणसंयुतम्॥ ६८

अनिच्छन्नपि राजासौ मुनिशापभयान्नृपः।
विश्वामित्रस्तु तौ गृह्य अयोध्याया ययौ शनैः॥ ६९

सरय्वास्तीरमासाद्य गच्छन्नेव स कौशिकः।
तयोः प्रीत्या स राजेन्द्र द्वे विद्ये प्रथमं ददौ॥ ७०

बलामतिबलां चैव समन्त्रे च ससंग्रहे।
क्षुत्पिपासापनयने पुनश्चैव महामतिः॥ ७१

अस्त्रग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तु तौ तदा।
आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ७२

दर्शयित्वा उषित्वा च पुण्यस्थानेषु सत्तमः।
गङ्गामुत्तीर्य शोणस्य तीरमासाद्य पश्चिमम्॥ ७३

विश्वामित्रजी यह सुनकर उन अमित-तेजस्वी राजासे पुनः बोले— 'नृपश्रेष्ठ! रामचन्द्र अबोध नहीं हैं; वे सर्वज्ञ, समदर्शी और परम समर्थ हैं। इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण साक्षात् नारायण एवं शेषनाग हैं। नराधिप! दुष्टोंको दण्ड देने और सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये ही ये दोनों आपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है। राजन्! इनकी माता तथा आपको इस विषयमें थोड़ी-सी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। महाराज! ये मेरे पास धरोहरके तौरपर रहेंगे। यज्ञ पूर्ण हो जानेपर मैं इन दोनोंको आपके हाथमें दे दूँगा'॥ ५८—६१॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके यों कहनेपर दशरथजी मन-ही-मन उनके शापसे डरते हुए बोले—'अच्छा, इन्हें ले जाइये।' राजन्! पिताके द्वारा बड़ी कठिनाईसे छोड़े गये श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्र मुनि तब अपने सिद्धाश्रमकी ओर प्रस्थित हुए। उन्हें जाते देख उस समय राजा दशरथ कुछ दूर पीछे-पीछे गये और तब मुनिसे इस प्रकार बोले—'साधुश्रेष्ठ! ब्रह्मन्! मैं पहले दीर्घकालतक पुत्रहीन रहा; मुनियोंकी कृपासे अनेक सकाम यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान करके अब पुत्रवान् हो सका हूँ। अतः मुने! मैं मनसे भी इन पुत्रोंका अधिक कालतक वियोग नहीं सह सकूँगा, यह बात आप ही जानते हैं; अतः इन्हें ले जाकर फिर यथासम्भव शीघ्र मेरे पास पहुँचा दीजियेगा'॥ ६२—६६॥

उनके यों कहनेपर विश्वामित्रजीने पुनः राजासे कहा—'अपना यज्ञ समाप्त हो जानेपर मैं पुनः श्रीराम और लक्ष्मण-को यहाँ ले आऊँगा तथा अपने वचनको सत्य करते हुए इन्हें वापस कर दूँगा, आप चिन्ता न करें'॥ ६७½॥

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजाने उनके शापकी आशङ्कासे भयभीत हो, इच्छा न रहते हुए भी, श्रीराम और लक्ष्मणको उनके साथ भेज दिया। विश्वामित्रजी उन दोनों भाइयोंको साथ ले धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले॥ ६८-६९॥

राजेन्द्र! सरयूके तटपर पहुँचकर महामति विश्वामित्रजीने चलते-चलते ही श्रीराम और लक्ष्मणको प्रेमवश पहले 'बला' और 'अतिबला' नामकी दो विद्याएँ प्रदान कीं, जो क्षुधा और पिपासाको दूर करनेवाली हैं। मुनिने उन विद्याओंको मन्त्र और संग्रह (उपसंहार) पूर्वक सिखाया। फिर उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र-समुदायकी शिक्षा देकर वे साधुश्रेष्ठ मुनि श्रीराम और लक्ष्मणको अनेक आत्मज्ञानी मुनीश्वरोंके दिव्य आश्रम दिखाते और पवित्र तीर्थस्थानोंमें निवास करते हुए गङ्गा नदीको पारकर शोणभद्रके पश्चिम तटपर जा पहुँचे॥ ७०—७३॥

मुनिधार्मिकसिद्धांश्च पश्यन्तौ रामलक्ष्मणौ।
ऋषिभ्यश्च वरान् प्राप्य तेन नीतौ नृपात्मजौ॥ ७४

ताटकाया वनं घोरं मृत्योर्मुखमिवापरम्।
गते तत्र नृपश्रेष्ठ विश्वामित्रो महातपाः॥ ७५

राममक्लिष्टकर्माणमिदं वचनमब्रवीत्।
राम राम महाबाहो ताटका नाम राक्षसी॥ ७६

रावणस्य नियोगेन वसत्यस्मिन् महावने।
तया मनुष्या बहवो मुनिपुत्रा मृगास्तथा॥ ७७

निहता भक्षिताश्चैव तस्मात्तां वध सत्तम।
इत्येवमुक्तो मुनिना रामस्तं मुनिमब्रवीत्॥ ७८

कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने।
स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ७९

इति रामवचः श्रुत्वा विश्वामित्र उवाच तम्।
तस्यास्तु निधनाद्राम जनाः सर्वे निराकुलाः॥ ८०

भवन्ति सततं तस्मात् तस्याः पुण्यप्रदो वधः।
इत्येवं वादिनि मुनौ विश्वामित्रे निशाचरी॥ ८१

आगता सुमहाघोरा ताटका विवृताननना।
मुनिना प्रेरितो रामस्तां दृष्ट्वा विवृताननाम्॥ ८२

उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं
श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां
पत्रिणा सह मुमोच राघवः॥ ८३

शरं संधाय वेगेन तेन तस्या उरःस्थलम्।
विपाटितं द्विधा राजन् सा पपात ममार च॥ ८४

घातयित्वा तु तामेवं तावानीय मुनिस्तु तौ।
प्रापयामास तं तत्र नानाऋषिनिषेवितम्॥ ८५

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्।
नानानिर्झरतोयाढ्यं विन्ध्यशैलान्तरस्थितम्॥ ८६

शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम्।
रक्षार्थं तावुभौ स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः॥ ८७

मार्गमें मुनियों, धर्मात्माओं और सिद्धोंका दर्शन करते हुए तथा ऋषियोंसे वर प्राप्तकर, राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके द्वारा उस ताड़कावनमें ले जाये गये, जो यमराजके दूसरे मुखके समान भयंकर था। नृपश्रेष्ठ! वहाँ पहुँचकर महातपस्वी विश्वामित्रने अनायास ही महान् कर्म करनेवाले रामसे कहा—'महाबाहो राम! इस महान् वनमें रावणकी आज्ञासे 'ताड़का' नामकी एक राक्षसी रहती है। उसने बहुत-से मनुष्यों, मुनिपुत्रों और मृगोंको मारकर अपना आहार बना लिया है; अतः सत्तम! तुम उसका वध करो'॥ ७४—७७½॥

मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर रामने उनसे कहा—'महामुने! आज मैं स्त्रीका वध कैसे करूँ? क्योंकि बुद्धिमान् लोग स्त्रीवधमें महान् पाप बतलाते हैं।' श्रीरामकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने उनसे कहा—'राम! उस ताड़काको मारनेसे सभी मनुष्य सदाके लिये निर्भय हो जायँगे, इसलिये उसका वध करना तो पुण्यदायक है'॥ ७८—८०½॥

मुनिवर विश्वामित्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि वह महाघोर राक्षसी ताड़का मुँह फैलाये वहाँ आ पहुँची। तब मुनिकी प्रेरणासे रामने उसकी ओर देखा। वह मुँह बाये आ रही थी। उसकी छड़ी-सरीखी एक बाँह ऊपरकी ओर उठी थी। कटिप्रदेशमें मेखला (करधनी)-की जगह लिपटी हुई मनुष्यकी अँतड़ी लटक रही थी। इस रूपमें आती हुई उस निशाचरीको देखकर श्रीरामने स्त्रीवधके प्रति होनेवाली घृणा और बाणको एक साथ ही छोड़ दिया। राजन्! उन्होंने धनुषपर बाण रखकर उसे बड़े वेगसे छोड़ा। उस बाणने ताड़काकी छातीके दो टुकड़े कर दिये। फिर तो वह धरतीपर गिरी और मर गयी॥ ८१—८४॥

इस प्रकार ताड़काका वध करवाकर मुनि श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंको अपने उस दिव्य सिद्धाश्रमपर ले आये, जो बहुत-से मुनियोंद्वारा सेवित था। वह आश्रम विन्ध्य पर्वतकी मध्यवर्तिनी उपत्यकामें विद्यमान था। वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष और लतासमूह फैले हुए थे और भाँति-भाँतिके पुष्प उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह आश्रम अनेकानेक झरनोंके जलसे सुशोभित तथा शाक एवं मूल-फलादिसे सम्पन्न था। वहाँ उन दोनों राजकुमारोंको विशेषरूपसे शिक्षा देकर मुनिने उनको यज्ञकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया।

ततश्चारब्धवान् यागं विश्वामित्रो महातपाः।
दीक्षां प्रविष्टे च मुनौ विश्वामित्रे महात्मनि॥ ८८

यज्ञे तु विततते तत्र कर्म कुर्वन्ति ऋत्विजः।
मारीचश्च सुबाहुश्च बहवश्चान्यराक्षसाः॥ ८९

आगता यागनाशाय रावणेन नियोजिताः।
तानागतान् स विज्ञाय रामः कमललोचनः॥ ९०

शरेण पातयामास सुबाहुं धरणीतले।
असृक्प्रवाहं वर्षन्तं मारीचं भल्लकेन तु॥ ९१

प्रताड्य नीतवानब्धिं यथा पर्णं तु वायुना।
शेषांस्तु हतवान् रामो लक्ष्मणश्च निशाचरान्॥ ९२

रामेण रक्षितमखो विश्वामित्रो महायशाः।
समाप्य यागं विधिवत् पूजयामास ऋत्विजान्॥ ९३

सदस्यानपि सम्पूज्य यथार्हं च ह्यरिंदम।
रामं च लक्ष्मणं चैव पूजयामास भक्तितः॥ ९४

ततो देवगणस्तुष्टो यज्ञभागेन सत्तम।
ववर्ष पुष्पवर्षं तु रामदेवस्य मूर्धनि॥ ९५

निवार्य राक्षसभयं कारयित्वा तु तन्मखम्।
श्रुत्वा नानाकथाः पुण्या रामो भ्रातृसमन्वितः॥ ९६

तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शप्ता हि सा पुरा॥ ९७

पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात्।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति॥ ९८

विश्वामित्रस्ततस्तत्र चिन्तयामास वै क्षणम्।
कृतदारो मया नेयो रामः कमललोचनः॥ ९९

इति संचिन्त्य तौ गृह्य विश्वामित्रो महातपाः।
शिष्यैःपरिवृतोऽनेकैर्जगाम मिथिलां प्रति॥ १००

तदनन्तर महान् तपस्वी विश्वामित्रने यज्ञ आरम्भ किया॥ ८५—८७½॥

महात्मा विश्वामित्र ज्यों-ही यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए, उस यज्ञका कार्य चालू हो गया। उसमें ऋत्विज्गण अपना-अपना कार्य करने लगे। तब रावणके द्वारा नियुक्त मारीच, सुबाहु तथा अन्य बहुत-से राक्षसगण यज्ञ नष्ट करनेके लिये वहाँ आये। उन सबको वहाँ आया जान कमलनयन श्रीरामने बाण मारकर 'सुबाहु' नामक राक्षसको तो धराशायी कर दिया। वह अपने शरीरसे रक्तकी वर्षा-सी करने लगा। इसके बाद 'भल्ल' नामक बाणका प्रहार करके श्रीरामने मारीचको उसी तरह समुद्रके तटपर फेंक दिया, जैसे वायु पत्तेको उड़ाकर दूर फेंक दे। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंने मिलकर शेष सभी राक्षसोंका वध कर डाला॥ ८८—९२॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा यज्ञकी रक्षा होती रहनेसे महायशस्वी विश्वामित्रने उस यज्ञको विधिवत् पूर्ण करके ऋत्विजोंका दक्षिणादिसे पूजन किया। शत्रुदमन! उस यज्ञके सदस्योंका भी यथोचित समादर करके विश्वामित्रजीने श्रीराम और लक्ष्मणकी भी भक्तिपूर्वक पूजा एवं प्रशंसा की। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! तदनन्तर उस यज्ञमें मिले हुए भागोंसे सन्तुष्ट देवताओंने भगवान् रामके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा की॥ ९३—९५॥

इस प्रकार भाई लक्ष्मणके साथ विनयशील श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंसे प्राप्त भयका निवारण करके, विश्वामित्रका यज्ञ पूर्ण कराकर, नाना प्रकारकी पावन कथाएँ सुनते हुए मुनिके द्वारा उस स्थानपर लाये गये, जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्र! पूर्वकालमें इन्द्रके साथ व्यभिचार करनेसे अपने पति गौतमका शाप प्राप्तकर अहल्या पत्थर हो गयी थी। उस समय रामका दर्शन पाते ही वह शापसे मुक्त हो पुनः अपने पति गौतमके पास चली गयी॥ ९६—९८॥

तदनन्तर विश्वामित्रजीने वहाँ क्षणभर विचार किया कि मुझे कमललोचन रामचन्द्रजीका विवाह करके इन्हें अयोध्या ले चलना चाहिये। यह सोचकर अनेक शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी विश्वामित्रजी श्रीराम और लक्ष्मणको साथ ले मिथिलाकी ओर चल दिये॥ ९९-१००॥

नानादेशादथायाता जनकस्य निवेशनम्।
राजपुत्रा महावीर्याः पूर्वं सीताभिकाङ्क्षिणः॥ १०१
तान् दृष्ट्वा पूजयित्वा तु जनकश्च यथार्हतः।
यत्सीतायाः समुत्पन्नं धनुर्माहेश्वरं महत्॥ १०२
अर्चितं गन्धमालाभी रम्यशोभासमन्विते।
रङ्गे महति विस्तीर्णे स्थापयामास तद्धनुः॥ १०३
उवाच च नृपान् सर्वांस्तदोच्चैर्जनको नृपः।
आकर्षणादिदं येन धनुर्भग्नं नृपात्मजाः॥ १०४
तस्येयं धर्मतो भार्या सीता सर्वाङ्गशोभना।
इत्येवं श्रावितं तेन जनकेन महात्मना॥ १०५
क्रमादादाय ते तत्तु सज्यीकर्तुमथाभवन्।
धनुषा ताडिताः सर्वे क्रमात्तेन महीपते॥ १०६
विधूय पतिता राजन् विलज्जास्तत्र पार्थिवाः।
तेषु भग्नेषु जनकस्तद्धनुस्त्र्यम्बकं नृप॥ १०७
संस्थाप्य स्थितवान् वीरो रामागमनकाङ्क्षया।
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो मिथिलाधिपतेर्गृहम्॥ १०८
जनकोऽपि च तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं गृहागतम्।
रामलक्ष्मणसंयुक्तं शिष्यैश्चाभिगतं तदा॥ १०९
तं पूजयित्वा विधिवत्प्राज्ञं विप्रानुयायिनम्।
रामं रघुपतिं चापि लावण्यादिगुणैर्युतम्॥११०
शीलाचारगुणोपेतं लक्ष्मणं च महामतिम्।
पूजयित्वा यथान्यायं जनकः प्रीतमानसः॥ १११
हेमपीठे सुखासीनं शिष्यैः पूर्वापरैर्वृतम्।
विश्वामित्रमुवाचाथ किं कर्तव्यं मयेति सः॥ ११२

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मुनिः प्राह महीपतिम्।
एष रामो महाराज विष्णुः साक्षान्महीपतिः॥ ११३
रक्षार्थं विष्टपानां तु जातो दशरथात्मजः।
अस्मै सीतां प्रयच्छ त्वं देवकन्यामिव स्थिताम्॥ ११४
अस्या विवाहे राजेन्द्र धनुर्भङ्गमुदीरितम्।
तदानय भवधनुरर्चयस्व जनाधिप॥ ११५

इनके जानेसे पूर्व ही वहाँ सीतासे विवाह करनेकी इच्छावाले अनेक महान् पराक्रमी राजकुमार नाना देशोंसे जनकके यहाँ पधारे थे। उन सबको आया देख राजा जनकने उनका यथोचित सत्कार किया तथा जो सीताके स्वयंवरके लिये ही प्रकट हुआ था, उस महान् माहेश्वर धनुषका चन्दन और पुष्प आदिसे पूजन करके उसे रमणीय शोभासे सम्पन्न सुविस्तृत रङ्गमञ्चपर लाकर रखवाया॥ १०१—१०३॥

तब राजा जनकने वहाँ पधारे हुए उन समस्त राजाओंके प्रति उच्च स्वरसे कहा—'राजकुमारो! जिसके खींचनेसे यह धनुष टूट जायगा, यह सर्वाङ्गसुन्दरी सीता उसीकी धर्मपत्नी हो सकती है।' महात्मा जनकके द्वारा ऐसी बात सुनायी जानेपर वे नरेशगण क्रमशः उस धनुषको ले-लेकर चढ़ानेका प्रयत्न करने लगे; परंतु बारी-बारीसे उस धनुषद्वारा ही झटके खाकर काँपते हुए वे दूर गिर जाते थे। राजन्! इससे उन सभी भूपालोंको वहाँ बड़ी लज्जा हुई। नरेश्वर! उन सबके निराश हो जानेपर वीर राजा जनक उस शिव-धनुषको यथास्थान रखवाकर श्रीरामके आगमनकी प्रतीक्षामें वहाँ ही ठहरे रहे। इतनेमें विश्वामित्रजी मिथिलानरेशके राजभवनमें आ पहुँचे॥ १०४—१०८॥

जनकने श्रीराम, लक्ष्मण तथा शिष्योंसे युक्त विश्वामित्रजीको अपने भवनमें आया देख उस समय उनकी विधिवत् पूजा की। फिर ब्राह्मणका अनुसरण करनेवाले तथा लावण्य आदि गुणोंसे लक्षित रघुवंशनाथ बुद्धिमान् श्रीराम एवं शील-सदाचारादि गुणोंसे युक्त महामति लक्ष्मणका भी यथायोग्य पूजन करके जनकजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् सोनेके सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठकर छोटे-बड़े शिष्योंसे घिरे हुए मुनिवर विश्वामित्रसे वे बोले—'भगवन्! अब मुझे क्या करना चाहिये'॥ १०९—११२॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजा जनककी यह बात सुनकर मुनिने उनसे कहा—'महाराज! ये राजा राम साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। (तीनों) लोकोंकी रक्षाके लिये ये दशरथके पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; अतः देवकन्याके समान सुशोभित होनेवाली सीताका ब्याह तुम इन्हींके साथ कर दो। परंतु राजेन्द्र! नराधिप! तुमने सीताके विवाहमें धनुष तोड़नेकी शर्त रखी है; अतः अब उस शिवधनुषको लाकर यहाँ उसकी अर्चना करो'॥ ११३—११५॥

तथेत्युक्त्वा च राजा हि भवचापं तदद्भुतम्।
अनेक भूभुजां भङ्गि स्थापयामास पूर्ववत्॥ ११६

ततो दशरथसुतो विश्वामित्रेण चोदितः।
तेषां मध्यात्समुत्थाय रामः कमललोचनः॥ ११७

प्रणम्य विप्रान् देवांश्च धनुरादाय तत्तदा।
सज्यं कृत्वा महाबाहुर्ज्याघोषमकरोत्तदा॥ ११८

आकृष्यमाणं तु बलात्तेन भग्नं महद्धनुः।
सीता च मालामादाय शुभां रामस्य मूर्धनि॥ ११९

क्षिप्त्वा संवरयामास सर्वक्षत्रियसंनिधौ।
ततस्ते क्षत्रियाः क्रुद्धा राममासाद्य सर्वतः॥ १२०

मुमुचुः शरजालानि गर्जयन्तो महाबलाः।
तान्निरीक्ष्य ततो रामो धनुरादाय वेगवान्॥ १२१

ज्याघोषतलघोषेण कम्पयामास तान्नृपान्।
चिच्छेद शरजालानि तेषां स्वास्त्रै रथांस्ततः॥ १२२

धनूंषि च पताकाश्च रामश्चिच्छेद लीलया।
संनह्य स्वबलं सर्वं मिथिलाधिपतिस्ततः॥ १२३

जामातरं रणे रक्षन् पार्ष्णिग्राहो बभूव ह।
लक्ष्मणश्च महावीरो विद्राव्य युधि तान्नृपान्॥ १२४

हस्त्यश्वाङ्गगृहे तेषां स्यन्दनानि बहूनि च।
वाहनानि परित्यज्य पलायनपरान्नृपान्॥ १२५

तान्निहन्तुं च धावत्स पृष्ठतो लक्ष्मणस्तदा।
मिथिलाधिपतिस्तं च वारयामास कौशिकः॥ १२६

जितसेनं महावीरं रामं भ्रात्रा समन्वितम्।
आदाय प्रविवेशाथ जनकः स्वगृहं शुभम्॥ १२७

दूतं च प्रेषयामास तदा दशरथाय सः।
श्रुत्वा दूतमुखात् सर्वं विदितार्थः स पार्थिवः॥ १२८

सभार्यः ससुतः श्रीमान् हस्त्यश्वरथवाहनः।
मिथिलामाजगामाशु स्वबलेन समन्वितः॥ १२९

जनकोऽप्यस्य सत्कारं कृत्वा स्वां च सुतां ततः।
विधिवत्कृतशुल्कां तां ददौ रामाय पार्थिव॥ १३०

अपराश्च सुतास्तिस्रो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः।
त्रिभ्यस्तु लक्ष्मणादिभ्यः स्वकन्या विधिवद्ददौ॥ १३१

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजाने अनेक भूपालोंका मान भङ्ग करनेवाले उस अद्भुत शिवधनुषको पूर्ववत् वहाँ रखवाया। तत्पश्चात् कमललोचन दशरथनन्दन राम विश्वामित्रजीके आज्ञा देनेपर राजाओंके बीचसे उठे और ब्राह्मणों तथा देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने वह धनुष उठा लिया। फिर उन महाबाहुने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसकी टंकार की। रामके द्वारा बलपूर्वक खींचे जानेसे वह महान् धनुष सहसा टूट गया। तब सीताजी सुन्दर माला लेकर आयीं और उन सम्पूर्ण क्षत्रियोंके निकट भगवान् रामके गलेमें वह माला डालकर उन्होंने उनका विधिपूर्वक पतिरूपसे वरण किया। इससे वहाँ आये हुए सभी महाबली क्षत्रिय कुपित हो गये और श्रीरामचन्द्रजीपर सब ओरसे आक्रमण एवं गर्जना करते हुए उनपर बाण बरसाने लगे। उन्हें यों करते देख श्रीरामने भी वेगपूर्वक हाथमें धनुष ले प्रत्यञ्चाकी टंकारसे उन सभी नरेशोंको कम्पित कर दिया और अपने अस्त्रोंसे उन सबके बाण तथा रथ काट डाले। इतना ही नहीं, श्रीरामने लीलापूर्वक ही उनके धनुष तथा पताकाएँ भी काट डालीं। तदनन्तर मिथिलानरेश भी अपनी सारी सेना तैयार करके उस संग्राममें जामाता श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पृष्ठपोषक हो गये। इधर, महावीर लक्ष्मणने भी युद्धमें उन राजाओंको मार भगाया तथा उनके हाथी, घोड़े और बहुत-से रथ अपने अधिकारमें कर लिये। अपने वाहन छोड़कर भागे जाते हुए उन राजाओंको मार डालनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे दौड़े। तब उन्हें मिथिलानरेश जनक और विश्वामित्रने मना कर दिया॥ ११६—१२६॥

राजाओंकी सेनापर विजय पाये हुए महावीर श्रीरामको लक्ष्मणसहित साथ ले राजा जनकने अपने सुन्दर भवनमें प्रवेश किया। उसी समय उन्होंने राजा दशरथके पास एक दूत भेजा। दूतके मुखसे सारी बातें सुनकर राजाको सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। तब श्रीमान् राजा दशरथ अपनी रानियों और पुत्रोंको साथ ले, हाथी, घोड़े और रथ आदि वाहनोंसे सम्पन्न हो, सेनाके साथ तुरन्त ही मिथिलामें पधारे। राजन्! जनकने भी राजा दशरथका भलीभाँति सत्कार किया। फिर विधिपूर्वक जिसके पाणिग्रहणकी शर्त पूरी की जा चुकी थी, उस अपनी कन्या सीताको रामके हाथमें दे दिया। तत्पश्चात् अपनी अन्य तीन कन्याओंको भी, जो परमसुन्दरी और आभूषणोंसे अलङ्कृत थीं, लक्ष्मण आदि तीन भाइयोंके साथ विधिपूर्वक ब्याह दिया॥ १२७—१३१॥

एवं कृतविवाहोऽसौ रामः कमललोचनः।
भ्रातृभिर्मातृभिः सार्धं पित्रा बलवता सह॥ १३२
दिनानि कतिचित्तत्र स्थितो विविधभोजनैः।
ततोऽयोध्यापुरीं गन्तुमुत्सुकं ससुतं नृपम्।
दृष्ट्वा दशरथं राजा सीतायाः प्रददौ वसु॥ १३३
रत्नानि दिव्यानि बहूनि दत्त्वा
रामाय वस्त्राण्यतिशोभनानि।
हस्त्यश्वदासानपि कर्मयोग्यान्
दासीजनांश्च प्रवराः स्त्रियश्च॥ १३४
सीतां सुशीलां बहुरत्नभूषितां
रथं समारोप्य सुतां सुरूपाम्।
वेदादिघोषैर्बहुमङ्गलैश्च
सम्प्रेषयामास स पार्थिवो बली॥ १३५
प्रेषयित्वा सुतां दिव्यां नत्वा दशरथं नृपम्।
विश्वामित्रं नमस्कृत्य जनकः संनिवृत्तवान्॥ १३६
तस्य पत्न्यो महाभागाः शिक्षयित्वा सुतां तदा।
भर्तृभक्तिं कुरु शुभे श्वश्रूणां श्वशुरस्य च॥ १३७
श्वश्रूणामर्पयित्वा तां निवृत्ता विविशुः पुरम्।
ततस्तु रामं गच्छन्तमयोध्यां प्रबलान्वितम्॥ १३८
श्रुत्वा परशुरामो वै पन्थानं संरुरोध ह।
तं दृष्ट्वा राजपुरुषाः सर्वे ते दीनमानसाः॥ १३९
आसीद्दशरथश्चापि दुःखशोकपरिप्लुतः।
सभार्यः सपरीवारो भार्गवस्य भयान्नृप॥१४०
ततोऽब्रवीज्जनान् सर्वान् राजानं च सुदुःखितम्।
वसिष्ठश्चोर्जिततपा ब्रह्मचारी महामुनिः॥ १४१

वसिष्ठ उवाच

युष्माभिरत्र रामार्थं न कार्यं दुःखमण्वपि॥ १४२
पित्रा वा मातृभिर्वापि अन्यैर्भृत्यजनैरपि।
अयं हि नृपते रामः साक्षाद्विष्णुस्तु ते गृहे॥ १४३
जगतः पालनार्थाय जन्मप्राप्तो न संशयः।
यस्य संकीर्त्य नामापि भवभीतिः प्रणश्यति॥ १४४
ब्रह्म मूर्तं स्वयं यत्र भयादेस्तत्र का कथा।
यत्र संकीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो॥ १४५
नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम्।

इस प्रकार विवाह कर लेनेके पश्चात् कमललोचन श्रीराम अपने भ्राताओं, माताओं और बलवान् पिताके साथ कुछ दिनोंतक नाना प्रकारके भोजनादिसे सत्कृत हो मिथिलापुरीमें रहे। फिर महाराज दशरथको अपने पुत्रोंके साथ अयोध्या जानेके लिये उत्कण्ठित देख राजा जनकने सीताके लिये बहुत-सा धन और दिव्य रत्न देकर श्रीरामके लिये अत्यन्त सुन्दर वस्त्र, क्रियाकुशल हाथी, घोड़े और दास दिये एवं दासीके रूपमें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी अर्पित कीं। उन बलवान् भूपालने बहुत-से रत्नमय आभूषणोंद्वारा विभूषित सुन्दरी साध्वी पुत्री सीताको रथपर चढ़ाकर वेदध्वनि तथा अन्य माङ्गलिक शब्दोंके साथ विदा किया। अपनी दिव्य कन्या सीताको विदा कर राजा जनक दशरथजी तथा विश्वामित्र [एवं वसिष्ठ] मुनिको प्रणाम करके लौट आये। तब जनककी अति सौभाग्य-शालिनी रानियाँ भी अपनी कन्याओंको यह शिक्षा देकर कि 'शुभे! तुम पतिकी भक्ति तथा सास-ससुरकी सेवा करना' उन्हें उनकी सासुओंको सौंप, नगरमें लौट आयीं॥ १३२—१३७½॥

कहते हैं, तदनन्तर यह सुनकर कि 'राम अपनी प्रबल सेनाके साथ अयोध्यापुरीको लौट रहे हैं', परशुरामने उनका मार्ग रोक लिया। उन्हें देखकर सभी राजपुरुषोंका हृदय कातर हो गया। नरेश्वर! परशुरामके भयसे राजा दशरथ भी अपनी स्त्री तथा परिवारके साथ दुःखी और शोकमग्न हो गये। तब उत्कृष्ट तपस्वी ब्रह्मचारी महामुनि वसिष्ठजी दुःखी राजा दशरथ तथा अन्य सब लोगोंसे बोले॥ १३८—१४१॥

वसिष्ठजीने कहा—तुम लोगोंको यहाँ श्रीरामके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, भाई अथवा अन्य भृत्यजन थोड़ा-सा भी खेद न करें। नरपाल! ये श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। समस्त जगत्की रक्षाके लिये ही इन्होंने तुम्हारे घरमें अवतार लिया है, इसमें संदेह नहीं है। जिनके नाममात्रका कीर्तन करनेसे संसाररूपी भय निवृत्त हो जाता है, वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान हैं, वहाँ भय आदिकी चर्चा भी कैसे की जा सकती है। प्रभो! जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी कथामात्रका भी कीर्तन होता है, वहाँ मनुष्योंके लिये संक्रामक बीमारी और अकालमृत्युका भय नहीं होता॥ १४२—१४५½॥

इत्युक्ते भार्गवो रामो राममाहाग्रतः स्थितम्॥ १४६

त्यज त्वं रामसंज्ञां तु मया वा संगरं कुरु।
इत्युक्ते राघवः प्राह भार्गवं तं पथि स्थितम्॥ १४७

रामसंज्ञां कुतस्त्यक्ष्ये त्वया योत्स्ये स्थिरो भव।
इत्युक्त्वा तं पृथक् स्थित्वा रामो राजीवलोचनः॥ १४८

ज्याघोषमकरोद्वीरो वीरस्यैवाग्रतस्तदा।
ततः परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवम्॥ १४९

पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत्।
दृष्ट्वा तं भार्गवो रामः प्रसन्नवदनोऽब्रवीत्॥ १५०

राम राम महाबाहो रामस्त्वं नात्र संशयः।
विष्णुरेव भवाञ्ज्ञातो ज्ञातोऽस्यद्य मया विभो॥ १५१

गच्छ वीर यथाकामं देवकार्यं च वै कुरु।
दुष्टानां निधनं कृत्वा शिष्टांश्च परिपालय॥ १५२

याहि त्वं स्वेच्छया राम अहं गच्छे तपोवनम्।
इत्युक्त्वा पूजितस्तैस्तु मुनिभावेन भार्गवः॥ १५३

महेन्द्राद्रिं जगामाथ तपसे धृतमानसः।
ततस्तु जातहर्षास्ते जना दशरथश्च ह॥ १५४

पुरीमयोध्यां सम्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः।
दिव्यशोभां पुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम्॥ १५५

प्रत्युत्थाय ततः पौराः शङ्खतूर्यादिभिः स्वनैः।
विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणेऽजितम्॥ १५६

तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम्।
तौ दृष्ट्वा स मुनिः प्राप्तौ रामं लक्ष्मणमन्तिके॥ १५७

दशरथाय तत्पित्रे मातृभ्यश्च विशेषतः।
तौ समर्प्य मुनिश्रेष्ठस्तेन राज्ञा च पूजितः।

विश्वामित्रश्च सहसा प्रतिगन्तुं मनो दधे॥ १५८

वसिष्ठजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि भृगुवंशी परशुरामजीने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"राम! तुम अपना यह 'राम' नाम त्याग दो, अथवा मेरे साथ युद्ध करो।" उनके यों कहनेपर रघुकुलनन्दन श्रीरामने मार्गमें खड़े हुए उन परशुरामजीसे कहा—"मैं 'राम' नाम कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हारे साथ युद्ध ही करूँगा, सँभल जाओ।" उनसे इस प्रकार कहकर कमललोचन श्रीराम अलग खड़े हो गये और उन वीरवरने उस समय वीर परशुरामके सामने ही धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार की। तब परशुरामजीके शरीरसे वैष्णव तेज निकलकर सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीरामके मुखमें समा गया। उस समय भृगुवंशी परशुरामने श्रीरामकी ओर देख प्रसन्नमुख होकर कहा—"महाबाहु श्रीराम! आप ही 'राम' हैं, अब इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है। प्रभो! आज मैंने आपको पहचाना; आप साक्षात् विष्णु ही इस रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। वीर! अब आप अपने इच्छानुसार जाइये, देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये और दुष्टोंका नाश करके साधु पुरुषोंका पालन कीजिये। श्रीराम! अब आप स्वेच्छानुसार चले जाइये; मैं भी तपोवनको जाता हूँ"॥ १४६—१५२½॥

यों कहकर परशुरामजी उन दशरथ आदिके द्वारा मुनिभावसे पूजित हुए और तपस्याके लिये मनमें निश्चय करके महेन्द्राचलको चले गये। तब समस्त बरातियों तथा महाराज दशरथको महान् हर्ष प्राप्त हुआ और वे (वहाँसे चलकर) श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्यापुरीके निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरीको सब ओर दिव्य सजावटसे सुसज्जित करके शङ्ख और दुन्दुभि आदि गाजे-बाजेके साथ उनकी अगवानीके लिये निकले। नगरके बाहर आकर वे रणमें अजेय श्रीरामजीको पत्नीसहित नगरमें प्रवेश करते हुए देखकर आनन्दमग्न हो गये और उन्हींके साथ अयोध्यामें प्रविष्ट हुए॥ १५३—१५६½॥

तत्पश्चात् मुनिवर विश्वामित्रने श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंको अपने निकट आया हुआ देखकर उन्हें उनके पिता दशरथ तथा विशेषरूपसे उनकी माताओंको समर्पित कर दिया। तब राजा दशरथद्वारा पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र सहसा लौट जानेके लिये उद्यत हुए।

समर्प्य रामं स मुनिः सहानुजं
सभार्यमग्रे पितुरेकवल्लभम्।
पुनः पुनः श्राव्य हसन्महामति-
र्जगाम सिद्धाश्रममेवमात्मनः॥ १५९

इस प्रकार महामति मुनि विश्वामित्रजीने छोटे भाई लक्ष्मण तथा भार्या सीताके साथ श्रीरामजीको, जो अपने पिताको एकान्त प्रिय थे, समर्पित कर दिया और उनके समक्ष बारम्बार उनका गुणगान करके हँसते हुए वे अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रमको चले गये॥ १५७—१५९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'रामावतारविषयक' सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम-वनवास; राजा दशरथका निधन तथा वनमें राम-भरतकी भेंट

मार्कण्डेय उवाच

कृतदारो महातेजा रामः कमललोचनः।
पित्रे सुमहतीं प्रीतिं जनानामुपपादयन्॥ १

अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः।
प्रीत्या नन्दत्ययोध्यायां रामे रघुपतौ नृप॥ २

भ्राता शत्रुघ्नसहितो भरतो मातुलं ययौ।
ततो दशरथो राजा प्रसमीक्ष्य सुशोभनम्॥ ३

युवानं बलिनं योग्यं भूपसिद्धयै सुतं कविम्।
अभिषिच्य राज्यभारं रामे संस्थाप्य वैष्णवम्॥ ४

पदं प्राप्तुं महद्यत्नं करिष्यामीत्यचिन्तयत्।
संचिन्त्य तत्परो राजा सर्वदिक्षु समादिशत्॥ ५

प्राज्ञान् भृत्यान् महीपालान्मन्त्रिणश्च त्वरान्वितः।
रामाभिषेकद्रव्याणि ऋषिप्रोक्तानि यानि वै॥ ६

तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ।
दूतामात्याः समादेशात्सर्वदिक्षु नराधिपान्॥ ७

आहूय तान् समाहृत्य शीघ्रमागन्तुमर्हथ।
अयोध्यापुरमत्यर्थं सर्वशोभासमन्वितम्॥ ८

जनाः कुरुत सर्वत्र नृत्यगीतादिनन्दितम्।
पुरवासिजनानन्दं देशवासिमनःप्रियम्॥ ९

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विवाह करनेके पश्चात् महातेजस्वी कमललोचन श्रीराम अयोध्यावासियोंका आनन्द बढ़ाते हुए सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हो, पिताके संतोषके लिये अयोध्यामें ही रहने लगे। नरेश्वर! जब रघुकुलनायक श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक अयोध्यामें सानन्द निवास करने लगे, तब उनके भाई भरत शत्रुघ्नको साथ लेकर अपने मामाके यहाँ चले गये। तदनन्तर राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको अप्रतिम सुन्दर, बलिष्ठ, नवयुवक, विद्वान् और राजा बनाये जानेके योग्य समझकर सोचा कि 'अब श्रीरामको राजपदपर अभिषिक्त करके राज्यका भार इन्हें सौंप दूँ और स्वयं भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त करनेके लिये महान् यत्न करूँ॥ १—४½॥

यह सोचकर राजा इस कार्यमें तत्पर हो गये और समस्त दिशाओंमें रहनेवाले बुद्धिमान् भृत्यों, अधीनस्थ राजाओं तथा मन्त्रियोंको तुरन्त आज्ञा दी—'भृत्यगण! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके लिये जो-जो सामान मुनियोंने बताये हैं, वे सब एकत्र करके शीघ्र ही आओ। दूतो और मन्त्रियो! तुम लोग भी मेरी आज्ञासे सब दिशाओंके राजाओंको बुलाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र यहाँ आ जाओ। पुरवासीजनो! तुम इस अयोध्यानगरीको उत्तम रीतिसे सजाकर सर्वथा शोभा-सम्पन्न बना दो तथा सर्वत्र नृत्य-गीत आदि उत्सवका ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे यह नगर समस्त पुरवासियोंको आनन्द देनेवाला हो जाय और सम्पूर्ण देशके निवासियोंको मनोहर प्रतीत होने लगे। तुम सब लोग यह

रामाभिषेकं विपुलं श्वो भविष्यति जानथ।
श्रुत्वेत्थं मन्त्रिणः प्राहुस्तं नृपं प्रणिपत्य च॥ १०

शोभनं ते मतं राजन् यदिदं परिभाषितम्।
रामाभिषेकमस्माकं सर्वेषां च प्रियंकरम्॥ ११

इत्युक्तो दशरथस्तैस्तान् सर्वान् पुनरब्रवीत्।
आनीयन्तां द्रुतं सर्वे सम्भारा मम शासनात्॥ १२

सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं समन्ततः।
अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम्॥ १३

इत्येवमुक्ता राज्ञा ते मन्त्रिणः शीघ्रकारिणः।
तथैव चक्रुस्ते सर्वे पुनःपुनरुदीरिताः॥ १४

प्राप्तहर्षः स राजा च शुभं दिनमुदीक्षयन्।
कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नागरो जनः॥ १५

रामाभिषेकमाकर्ण्य मुदं प्राप्यातिहर्षितः।
श्वश्रूश्वशुरयोः सम्यक् शुश्रूषणपरा तु सा॥ १६

मुदान्विता सिता सीता भर्तुराकर्ण्य शोभनम्।
श्वोभाविन्यभिषेके तु रामस्य विदितात्मनः॥ १७

दासी तु मन्थरानाम्नी कैकेय्याः कुब्जरूपिणी।
स्वां स्वामिनीं तु कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत्॥ १८

शृणु राज्ञि महाभागे वचनं मम शोभनम्।
त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः॥ १९

रामोऽसौ कौसलीपुत्रः श्वो भविष्यति भूपतिः।
वसुवाहनकोशादि राज्यं च सकलं शुभे॥ २०

भविष्यत्यद्य रामस्य भरतस्य न किंचन।
भरतोऽपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति॥ २१

हा कष्टं मन्दभाग्यासि सापत्न्याद्दुःखिता भृशम्।
सैवमाकर्ण्य कैकेयी कुब्जामिदमथाब्रवीत्॥ २२

पश्य मे दक्षतां कुब्जे अद्यैव त्वं विचक्षणे।
यथा तु सकलं राज्यं भरतस्य भविष्यति॥ २३

जान लो कि कल बड़े समारोहके साथ श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक होगा'॥ ५—९½॥

यह सुनकर मन्त्रियोंने राजाको प्रणाम करके उनसे कहा—'राजन्! आपने हमारे समक्ष अपना जो यह विचार व्यक्त किया है, बहुत ही उत्तम है। श्रीरामका अभिषेक हम सभीके लिये प्रियकारक है'॥ १०-११॥

उनके यों कहनेपर राजा पुनः उन सब लोगोंसे बोले—'अच्छा, अब मेरी आज्ञासे अभिषेकके सभी सामान शीघ्र लाये जायँ और समस्त वसुधाकी सारभूता इस अयोध्यापुरीको भी आज ही सब ओरसे सुसज्जित कर देना चाहिये। साथ ही एक यज्ञमण्डपकी रचना भी परम आवश्यक है'॥ १२-१३॥

राजाके यों कहने और बार-बार प्रेरणा करनेपर उन सब शीघ्रकारी मन्त्रियोंने उनके कथनानुसार सब कार्य पूर्ण कर दिये। राजा इस शुभ दिनकी प्रतीक्षा करते हुए बड़े ही आनन्दित हुए। कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण तथा अन्य पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकका शुभ समाचार सुनकर आनन्दके मारे फूले नहीं समाये। सास-ससुरकी सेवामें भलीभाँति लगी रहनेवाली सीता भी अपने पतिके लिये इस शुभ संवादको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई॥ १४—१६½॥

आत्मतत्त्वके ज्ञाता अथवा सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीरामका अभिषेक दूसरे ही दिन होनेवाला था। इसी बीचमें कैकेयीकी कुबड़ी दासी मन्थराने अपनी स्वामिनी कैकेयीके पास जाकर यह बात कही—'बड़भागिनी रानी! मैं एक बहुत अच्छी बात सुनाती हूँ, सुनो। तुम्हारे पति महाराज दशरथ अब तुम्हारा नाश करनेपर तुले हुए हैं। शुभे! वे जो कौशल्या-पुत्र राम हैं, कल ही राजा होंगे। धन, वाहन और कोश आदिके साथ यह सारा राज्य अब रामका हो जायगा; भरतका कुछ भी नहीं रहेगा। देखो, भाग्यकी बात; इस अवसरपर भरत भी बहुत दूर—अपने मामाके घर चले गये हैं। हाय! यह सब कितने कष्टकी बात है! तुम मन्दभागिनी हो। अब तुम्हें सौतकी ओरसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा'॥ १७—२१½॥

ऐसी बात सुनकर कैकेयीने कुब्जासे कहा—'बुद्धिमति कुब्जे! तू मेरी दक्षता तो देख—आज ही मैं ऐसा यत्न करती हूँ, जिससे यह सारा राज्य भरतका

रामस्य वनवासश्च तथा यत्नं करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा मन्थरां सा तु उन्मुच्य स्वाङ्गभूषणम्॥ २४

वस्त्रं पुष्पाणि चोन्मुच्य स्थूलवासोधराभवत्।
निर्माल्यपुष्पधृक्कष्टा कश्मलाङ्गी विरूपिणी॥ २५

भस्मधूल्यादिनिर्दिग्धा भस्मधूल्या तथा श्रिते।
भूभागे शान्तदीपे सा संध्याकाले सुदुःखिता॥ २६

ललाटे श्वेतचैलं तु बद्ध्वा सुष्वाप भामिनी।
मन्त्रिभिः सह कार्याणि सम्मन्त्र्य सकलानि तु॥ २७

पुण्याहः स्वस्तिमाङ्गल्यैः स्थाप्य रामं तु मण्डले।
ऋषिभिस्तु वसिष्ठाद्यैः सार्धं सम्भारमण्डपे॥ २८

वृद्धिजागरणीयैश्च सर्वतस्तूर्यनादिते।
गीतनृत्यसमाकीर्णे शङ्खकाहलनिःस्वनैः॥ २९

स्वयं दशरथस्तत्र स्थित्वा प्रत्यागतः पुनः।
कैकेय्या वेश्मनो द्वारं जरद्भिः परिरक्षितम्॥ ३०

रामाभिषेकं कैकेयीं वक्तुकामः स पार्थिवः।
कैकेयीभवनं वीक्ष्य सान्धकारमथाब्रवीत्॥ ३१

अन्धकारमिदं कस्मादद्य ते मन्दिरे प्रिये।
रामाभिषेकं हर्षाय अन्त्यजा अपि मेनिरे॥ ३२

गृहालंकरणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम्।
त्वयाद्य न कृतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः॥ ३३

ज्वालयित्वा गृहे दीपान् प्रविवेश गृहं नृपः।
अशोभनाङ्गीं कैकेयीं स्वपन्तीं पतितां भुवि॥ ३४

दृष्ट्वा दशरथः प्राह तस्याः प्रियमिदं त्विति।
आश्लिष्योत्थाय तां राजा शृणु मे परमं वचः॥ ३५

स्वमातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै।
तस्याभिषेकं रामस्य श्वो भविष्यति शोभने॥ ३६

हो जाय और रामका वनवास हो'॥ २२-२३½॥

मन्थरासे यों कहकर कैकेयीने अपने अङ्गोंके आभूषण उतार दिये। सुन्दर वस्त्र और फूलोंके हार भी उतार फेंके और मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर निर्माल्य (पूजासे उतरे हुए) पुष्पोंको धारण किया, देहमें राख और धूल लपेट ली और कुरूप वेष बनाकर वह शरीरमें कष्ट और मूर्च्छाका अनुभव करने लगी। वह भामिनी ललाटमें श्वेत वस्त्र बाँध, संध्याके समय दीपक बुझा, अँधेरेमें ही राख और धूलसे भरे भूभागमें अत्यन्त दुःखित हो लेट गयी॥ २४—२६½॥

इधर मन्त्रियोंके साथ सारे कार्योंके विषयमें मन्त्रणा करके, वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन और मङ्गलपाठादि करवाकर, श्रीरामको यज्ञ-सामग्रीसे युक्त मण्डपमें बिठाया और वृद्धि (नान्दीश्राद्ध) एवं जागरण-सम्बन्धी कृत्यके लिये उपयुक्त तथा सब ओर शहनाई एवं शङ्ख, काहल आदिके शब्दोंसे निनादित एवं गान और नृत्यके कार्यक्रमोंसे पूर्ण उस मण्डपमें थोड़ी देरतक स्वयं भी ठहरकर राजा दशरथ वहाँसे लौट आये। राजा कैकेयीसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकका शुभ समाचार सुनानेकी इच्छासे कैकेयीके भवनके दरवाजेपर पहुँचे, जहाँ बूढ़े सिपाही पहरा देते थे। कैकेयीके घरको अन्धकारयुक्त देख राजाने कहा॥ २७—३१॥

'प्रिये! आज तुम्हारे मन्दिरमें अन्धकार क्यों है? आज तो इस नगरके चाण्डालोंने भी श्रीरामचन्द्रके अभिषेकको आनन्दजनक माना है। सभी लोग अपने घरको सुन्दर ढंगसे सजा रहे हैं। तुमने अपने भवनको क्यों नहीं सुसज्जित किया?'—यों कहकर राजाने घरमें दीप प्रज्वलित कराये; फिर उसके भीतर प्रवेश किया। वहाँ कैकेयी धरतीपर पड़ी सो रही थी। उसका प्रत्येक अङ्ग अशोभन जान पड़ता था। उसे इस अवस्थामें देख राजाने उठाकर हृदयसे लगाया और उसको प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे—'प्रिये! मेरी उत्तम बात सुनो। सुन्दरि! जो तुम्हारे प्रति अपनी मातासे भी अधिक प्रेम रखते हैं, उन्हीं श्रीरामचन्द्रका कल राज्याभिषेक होगा'॥ ३२—३६॥

इत्युक्ता पार्थिवेनापि किंचिन्नोवाच सा शुभा।
मुञ्चन्ती दीर्घमुष्णं च रोषोच्छ्वासं मुहुर्मुहुः॥ ३७

तस्थावाश्लिष्य हस्ताभ्यां पार्थिवः प्राह रोषिताम्।
किं ते कैकेयि दुःखस्य कारणं वद शोभने॥ ३८

वस्त्राभरणरत्नादि यद्यदिच्छसि शोभने।
तत्त्वं गृह्णीष्व निश्शङ्कं भाण्डारात् सुखिनी भव॥ ३९

भाण्डारेण मम शुभे श्वोऽर्थसिद्धिर्भविष्यति।
यदाभिषेकं सम्प्राप्ते रामे राजीवलोचने॥ ४०

भाण्डागारस्य मे द्वारं मया मुक्तं निरर्गलम्।
भविष्यति पुनः पूर्णं रामे राज्यं प्रशासति॥ ४१

बहु मानय रामस्य अभिषेकं महात्मनः।
इत्युक्ता राजवर्य्येण कैकेयी पापलक्षणा॥ ४२

कुमतिर्निर्घृणा दुष्टा कुब्जया शिक्षिताब्रवीत्।
राजानं स्वपतिं वाक्यं क्रूरमत्यन्तनिष्ठुरम्॥ ४३

रत्नादि सकलं यत्ते तन्ममैव न संशयः।
देवासुरमहायुद्धे प्रीत्या यन्मे वरद्वयम्॥ ४४

पुरा दत्तं त्वया राजंस्तदिदानीं प्रयच्छ मे।
इत्युक्तः पार्थिवः प्राह कैकेयीमशुभां तदा॥ ४५

अदत्तमप्यहं दास्ये तव नान्यस्य वा शुभे।
किं मे प्रतिश्रुतं पूर्वं दत्तमेव मया तव॥ ४६

शुभाङ्गी भव कल्याणि त्यज कोपमनर्थकम्।
रामाभिषेकजं हर्षं भजोत्तिष्ठ सुखी भव॥ ४७

इत्युक्ता राजवर्येण कैकेयी कलहप्रिया।
उवाच परुषं वाक्यं राज्ञो मरणकारणम्॥ ४८

वरद्वयं पूर्वदत्तं यदि दास्यसि मे विभो।
श्वोभूते गच्छतु वनं रामोऽयं कोशलात्मजः॥ ४९

द्वादशाब्दं निवसतु त्वद्वाक्याद्दण्डके वने।
अभिषेकं च राज्यं च भरतस्य भविष्यति॥ ५०

राजाके इस प्रकार कहनेपर वह सुन्दरी कुछ भी न बोली। बारम्बार क्रोधपूर्वक केवल लम्बी-लम्बी गरम साँसें छोड़ती रही। राजा अपनी भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके बैठ गये और उस रूठी हुई कैकेयीसे बोले—'सुन्दरी कैकेयि! बताओ, तुम्हारे दुःखका क्या कारण है? शुभे! वस्त्र, आभूषण और रत्न आदि जिन-जिन वस्तुओंकी तुम्हें इच्छा हो, उन सबको बिना किसी आशङ्काके भण्डारघरसे ले लो; परंतु प्रसन्न हो जाओ। कल्याणि! कल जब श्रीरामका राज्याभिषेक सम्पन्न हो जायगा, उस समय उस भाण्डारसे मेरे मनोरथकी सिद्धि हो जायगी। इस समय तो मैंने भण्डारघरका द्वार उन्मुक्त कर रखा है। श्रीरामके राज्य-शासन करते समय वह फिर पूर्ण हो जायगा। प्रिये! महात्मा श्रीरामके राज्याभिषेकको तुम इस समय अधिक महत्त्व और सम्मान दो'॥ ३७—४१½॥

महाराज दशरथके इस प्रकार कहनेपर कुब्जाके द्वारा पढ़ायी गयी पापिनी, दुर्बुद्धि, दयाहीना और दुष्टा कैकेयीने अपने पति महाराज दशरथसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक निष्ठुर वचन कहा—'महाराज! इसमें संदेह नहीं कि आपके जो रत्न आदि हैं, वे सब मेरे ही हैं; किंतु पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर आपने प्रसन्न हो मुझे जो दो वर दिये थे, उन्हें ही इस समय दीजिये'॥ ४२—४४½॥

यह सुनकर राजाने उस अशुभा कैकेयीसे कहा—'शुभे! और किसीकी बात तो मैं नहीं कहता, परंतु तुम्हारे लिये तो जिसे नहीं देनेको कहा है, वह वस्तु भी दे दूँगा। फिर जिसको देनेके लिये मैंने पहले प्रतिज्ञा कर ली है, वह वस्तु तो दी हुई ही समझो। कल्याणि! अब सुन्दर वेष धारण करो और यह व्यर्थका कोप छोड़ दो। उठो, श्रीरामके राज्याभिषेकके आनन्दोत्सवमें भाग लो और सुखी हो जाओ'॥ ४५—४७॥

नृपश्रेष्ठ दशरथके यों कहनेपर कलहप्रिया कैकेयीने ऐसी कठोर बात कही, जो आगे चलकर राजाकी मृत्युका कारण बन गयी। उसने कहा—'प्रभो! यदि आप पहलेके दिये हुए दोनों वर मुझे देना चाहते हों तो (पहला वर मैं यही माँगती हूँ कि) ये कौशल्यानन्दन श्रीराम कल सबेरा होते ही वनको चले जायँ और आपकी आज्ञासे ये बारह वर्षोंतक दण्डकारण्यमें निवास करें तथा मेरा दूसरा अभीष्ट वर यह है कि अब राज्य और राज्याभिषेक भरतका होगा'॥ ४८—५०॥

इत्याकर्ण्य स कैकेय्या वचनं घोरमप्रियम्।
पपात भुवि निस्संज्ञो राजा सापि विभूषिता॥ ५१

रात्रिशेषं नयित्वा तु प्रभाते सा मुदावती।
दूतं सुमन्त्रमाहैवं राम आनीयतामिति॥ ५२

रामस्तु कृतपुण्याहः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः।
यागमण्डपमध्यस्थः शङ्खतूर्यरवान्वितः॥ ५३

तमासाद्य ततो दूतः प्रणिपत्य पुरःस्थितः।
राम राम महाबाहो आज्ञापयति ते पिता॥ ५४

द्रुतमुत्तिष्ठ गच्छ त्वं यत्र तिष्ठति ते पिता।
इत्युक्तस्तेन दूतेन शीघ्रमुत्थाय राघवः॥ ५५

अनुज्ञाप्य द्विजान् प्राप्तः कैकेय्या भवनं प्रति।
प्रविशन्तं गृहं रामं कैकेयी प्राह निर्घृणा॥ ५६

पितुस्तव मतं वत्स इदं ते प्रब्रवीम्यहम्।
वने वस महाबाहो गत्वा त्वं द्वादशाब्दकम्॥ ५७

अद्यैव गम्यतां वीर तपसे धृतमानसः।
न चिन्त्यमन्यथा वत्स आदरात् कुरु मे वचः॥ ५८

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं रामः कमललोचनः।
तथेत्याज्ञां गृहीत्वासौ नमस्कृत्य च तावुभौ॥ ५९

निष्क्रम्य तद्गृहाद्रामो धनुरादाय वेश्मतः।
कौशल्यां च नमस्कृत्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः॥ ६०

तच्छ्रुत्वा तु ततः पौरा दुःखशोकपरिप्लुताः।
विव्यथुश्चाथ सौमित्रिः कैकेयीं प्रति रोषितः॥ ६१

ततस्तं राघवो दृष्ट्वा लक्ष्मणं रक्तलोचनम्।
वारयामास धर्मज्ञो धर्मवाग्भिर्महामतिः॥ ६२

ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणम्य मुनींश्च सः।
रामो रथं खिन्नसूतं प्रस्थानायारुरोह वै॥ ६३

आत्मीयं सकलं द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मजः।
श्रद्धया परया दत्त्वा वस्त्राणि विविधानि च॥ ६४

कैकेयीके इस घोर अप्रिय वचनको सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कैकेयीने (प्रसन्नतापूर्वक) अपने-आपको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर लिया। शेष रात बिताकर प्रातःकाल कैकेयीने आनन्दित हो राजदूत सुमन्त्रसे कहा—'श्रीरामको यहाँ बुलाकर लाया जाय।' उस समय राम ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराकर, शङ्ख और तूर्य आदि वाद्योंका शब्द सुनते हुए यज्ञमण्डपमें विराजमान थे॥ ५१—५३॥

दूत सुमन्त्र उस समय श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो गये और बोले—'राम! महाबाहु श्रीराम! तुम्हारे पिताजीका आदेश है, जल्दी उठो और जहाँ तुम्हारे पिता विद्यमान हैं, वहाँ चलो।' दूतके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही उठे और ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले कैकेयीके भवनमें जा पहुँचे॥ ५४-५५½॥

श्रीरामको अपने भवनमें प्रवेश करते देख दयाहीना कैकेयीने कहा—'वत्स! तुम्हारे पिताका यह विचार मैं तुम्हें बता रही हूँ। महाबाहो! तुम बारह वर्षोंतक वनमें जाकर रहो। वीर! वहाँ तपस्या करनेका निश्चय मनमें लिये तुम आज ही चले जाओ। बेटा! तुम्हें अपने मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे वचनका आदरपूर्वक पालन करो'॥ ५६—५८॥

कैकेयीके मुखसे पिताका यह वचन सुनकर कमललोचन श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों—माता-पिताको प्रणाम करके उनके भवनसे निकलकर उन्होंने अपना धनुष सँभाला। फिर कौशल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे घरसे जानेको तैयार हो गये॥ ५९-६०॥

यह समाचार सुनते ही समस्त पुरवासीजन दुःख-शोकमें डूब गये और बड़ी व्यथाका अनुभव करने लगे। इधर सुमित्राकुमार लक्ष्मण कैकेयीके प्रति कुपित हो उठे। परम बुद्धिमान् धर्मज्ञ श्रीरामने लक्ष्मणको क्रोधसे लाल आँखें किये देख धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें शान्त किया। तत्पश्चात् वहाँ जो बड़े-बूढ़े उपस्थित थे, उनको तथा मुनियोंको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजी वनकी यात्राके लिये रथपर आरूढ़ हुए। उस रथका सारथि बहुत दुःखी था। उस समय राजकुमार श्रीरामने अपने पासके समस्त द्रव्य और नाना प्रकारके वस्त्र अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिये॥ ६१—६४॥

तिस्रः श्वश्रूः समामन्त्र्य श्वशुरं च विसंज्ञितम्।
मुञ्चन्तमश्रुधाराणि नेत्रयोः शोकजानि च॥ ६५

पश्यती सर्वतः सीता चारुरोह तथा रथम्।
रथमारुह्य गच्छन्तं सीतया सह राघवम्॥ ६६

दृष्ट्वा सुमित्रा वचनं लक्ष्मणं चाह दुःखिता।
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्॥ ६७

अयोध्यामटवीं विद्धि व्रज ताभ्यां गुणाकर।
मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा स्तनक्षीरार्द्रदेहया॥ ६८

तां नत्वा चारुयानं तमारुरोह स लक्ष्मणः।
गच्छतो लक्ष्मणो भ्राता सीता चैव पतिव्रता॥ ६९

रामस्य पृष्ठतो यातौ पुराद्धीरौ महामते।
विधिच्छिन्नाभिषेकं तं रामं राजीवलोचनम्॥ ७०

अयोध्याया विनिष्क्रान्तमनुयाताः पुरोहिताः।
मन्त्रिणः पौरमुख्याश्च दुःखेन महतान्विताः॥ ७१

तं च प्राप्य हि गच्छन्तं राममूचुरिदं वचः।
राम राम महाबाहो गन्तुं नार्हसि शोभन॥ ७२

राजन्नत्र निवर्तस्व विहायास्मान् क्व गच्छसि।
इत्युक्तो राघवस्तैस्तु तानुवाच दृढव्रतः॥ ७३

गच्छध्वं मन्त्रिणः पौरा गच्छध्वं च पुरोधसः।
पित्रादेशं मया कार्यमभियास्यामि वै वनम्॥ ७४

द्वादशाब्दं व्रतं चैतन्नीत्वाहं दण्डके वने।
आगच्छामि पितुः पादं मातॄणां द्रष्टुमञ्जसा॥ ७५

इत्युक्त्वा ताञ्जगामाथ रामः सत्यपरायणः।
तं गच्छन्तं पुनर्याताः पृष्ठतो दुःखिता जनाः॥ ७६

पुनः प्राह स काकुत्स्थो गच्छध्वं नगरीमिमाम्।
मातृश्च पितरं चैव शत्रुघ्नं नगरीमिमाम्॥ ७७

प्रजाः समस्तास्तत्रस्था राज्यं भरतमेव च।
पालयध्वं महाभागास्तपसे याम्यहं वनम्॥ ७८

तदनन्तर सीताजी भी अपनी तीनों सासुओंसे तथा नेत्रोंसे शोकाश्रुकी धारा बहाते हुए संज्ञाशून्य श्वशुर महाराज दशरथसे आज्ञा ले सब ओर देखती हुई रथपर आरूढ़ हुईं। सीताके साथ श्रीरामचन्द्रको रथपर चढ़कर वनमें जाते देख सुमित्रा अत्यन्त दुःखित हो लक्ष्मणसे बोलीं—'सद्गुणोंकी खान बेटा लक्ष्मण! तुम आजसे श्रीरामको ही पिता दशरथ समझो, सीताको ही मेरा स्वरूप मानो तथा वनको ही अयोध्या जानो। उन दोनोंके साथ ही सेवाके लिये तुम भी जाओ'॥ ६५—६७½॥

स्नेहवश जिनके स्तनोंसे दूध बहकर समस्त शरीरको भिगो रहा था, उन माता सुमित्राके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके स्वयं भी उस सुन्दर रथपर जा बैठे। महामते! इस प्रकार नगरसे वनमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे धीर-वीर भ्राता लक्ष्मण तथा सुस्थिर-हृदया पतिव्रता सीता—दोनों ही चले॥ ६८-६९½॥

दुर्दैवने जिनके राज्याभिषेकको बीचमें ही छिन्न-भिन्न कर दिया था, वे कमलनयन श्रीराम जब अयोध्यापुरीसे निकले, उस समय पुरोहित, मन्त्री और प्रधान-प्रधान पुरवासी भी बहुत दुःखी होकर उनके पीछे-पीछे चले तथा वनकी ओर जाते हुए श्रीरामके निकट पहुँचकर उनसे यों बोले—'राम! राम! महाबाहो! तुम्हें वनमें नहीं जाना चाहिये। शोभाशाली नरेश्वर! नगरको लौट चलो; हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हो?'॥ ७०—७२½॥

उनके यों कहनेपर दृढ़प्रतिज्ञ श्रीराम उनसे बोले—'मन्त्रियो! पुरवासियो! और पुरोहितगण! आप लोग लौट जायँ। मुझे अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है, इसलिये मैं वनमें अवश्य जाऊँगा। वहाँ दण्डकारण्यमें बारह वर्षोंतक वनवासके नियमको पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पिता और माताओंके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा'॥ ७३—७५॥

नगर-निवासियोंसे यों कहकर सत्यपरायण श्रीराम आगे बढ़ गये। उन्हें जाते देख पुनः सब लोग दुःखी हो उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने फिर कहा—महाभागगण! आपलोग इस अयोध्यापुरीको लौट जाइये और मेरे पिता-माताओंकी, भरत-शत्रुघ्नकी, इस अयोध्यानगरीकी, यहाँके समस्त प्रजाजनोंकी तथा इस राज्यकी भी रक्षा कीजिये। मैं वनमें तपस्याके लिये जाता हूँ'॥ ७६—७८॥

अथ लक्ष्मणमाहेदं वचनं राघवस्तदा।
सीतामर्पय राजानं जनकं मिथिलेश्वरम्॥ ७९

पितृमातृवशे तिष्ठ गच्छ लक्ष्मण याम्यहम्।
इत्युक्तः प्राह धर्मात्मा लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः॥ ८०

मैवमाज्ञापय विभो मामद्य करुणाकर।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम्॥ ८१

इत्युक्तो लक्ष्मणेनासौ सीतां तामाह राघवः।
सीते गच्छ ममादेशात् पितरं प्रति शोभने॥ ८२

सुमित्राया गृहे चापि कौशल्यायाः सुमध्यमे।
निवर्तस्व हि तावत्त्वं यावदागमनं मम॥ ८३

इत्युक्ता राघवेनापि सीता प्राह कृताञ्जलिः।
यत्र गत्वा वने वासं त्वं करोषि महाभुज॥ ८४

तत्र गत्वा त्वया सार्धं वसाम्यहमरिंदम।
वियोगं नो सहे राजंस्त्वया सत्यवता क्वचित्॥ ८५

अतस्त्वां प्रार्थयिष्यामि दयां कुरु मम प्रभो।
गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमवश्यं तत्र याम्यहम्॥ ८६

नानायानैरुपगताञ्जनान् वीक्ष्य स पृष्ठतः।
योषितां च गणान् रामो वारयामास धर्मवित्॥ ८७

निवृत्त्य स्थीयतां स्वैरमयोध्यायां जनाः स्त्रियः।
गत्वाहं दण्डकारण्यं तपसे धृतमानसः॥ ८८

कतिपयाब्दादायास्ये नान्यथा सत्यमीरितम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या च स्वभार्यया॥ ८९

जनान्निवर्त्य रामोऽसौ जगाम च गुहाश्रमम्।
गुहस्तु रामभक्तोऽसौ स्वभावादेव वैष्णवः॥ ९०

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने उस समय लक्ष्मणसे यह बात कही—'लक्ष्मण! तुम सीताको ले जाकर मिथिलापति राजा जनकको सौंप आओ और स्वयं पिता-माताके अधीन रहो। लौट जाओ, लक्ष्मण! मैं वनको अकेला ही जाऊँगा।' उनके यों कहनेपर भ्रातृवत्सल धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—'प्रभो! करुणानिधान! आप मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दीजिये। आप जहाँ भी जाना चाहते हैं, वहाँ मैं अवश्य चलूँगा।' लक्ष्मणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—'शोभने सीते! तुम मेरी आज्ञासे अपने पिताके यहाँ चली जाओ अथवा माता कौशल्या और सुमित्राके भवनमें जाकर रहो। सुन्दरि! तुम तबतकके लिये वहाँ लौट जाओ, जबतक कि मैं वनसे फिर यहाँ आ न जाऊँ'॥ ७९—८३॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर सीता भी हाथ जोड़कर बोली—'महाबाहो! हे शत्रुदमन! आप वनमें जहाँ जाकर निवास करेंगे, वहाँ चलकर मैं भी आपके ही साथ रहूँगी। राजन्! सत्यव्रतका पालन करनेवाले आप पतिदेवका वियोग मैं क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकती; इसलिये प्रभो! मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझपर दया करें। प्राणनाथ! आप जहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ मैं भी अवश्य ही चलूँगी'॥ ८४—८६॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि मेरे पीछे बहुत-से पुरुष नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर आ गये हैं तथा झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ भी आ गयी हैं; तब धर्मवेत्ता श्रीरामने उन सबको साथ चलनेसे मना किया और कहा—'पुरुषो! और स्त्रियो! आप सब लोग लौटकर अयोध्यामें स्वच्छन्दतापूर्वक रहें। मैं तपस्याके लिये चित्त एकाग्र करके दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। वहाँ कुछ ही वर्षोंतक रहनेके बाद मैं अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ लौट आऊँगा, यह मैंने सच्ची बात बतायी है। इसे अन्यथा नहीं मानना चाहिये'॥ ८७—८९॥

इस प्रकार अयोध्यावासी लोगोंको लौटाकर श्रीरामने गुहके आश्रमपर पदार्पण किया। गुह स्वभावसे ही वैष्णव तथा श्रीरामचन्द्रजीका परम भक्त था।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा किं कर्तव्यमिति स्थितः।
महता तपसाऽऽनीता गुरुणा या हि वः पुरा॥ ९१

भगीरथेन या भूमिं सर्वपापहरा शुभा।
नानामुनिजनैर्जुष्टा कूर्ममत्स्यसमाकुला॥ ९२

गङ्गा तुङ्गोर्मिमालाढ्या स्फटिकाभजलावहा।
गुहोपनीतनावा तु तां गङ्गां स महाद्युतिः॥ ९३

उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रमं शुभम्।
प्रयागे तु ततस्तस्मिन् स्नात्वा तीर्थे यथाविधि॥ ९४

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया सह।
भरद्वाजाश्रमे तत्र विश्रान्तस्तेन पूजितः॥ ९५

ततः प्रभाते विमले तमनुज्ञाप्य राघवः।
भरद्वाजोक्तमार्गेण चित्रकूटं शनैर्ययौ॥ ९६

नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम्।
तापसं वेषमास्थाय जह्नुकन्यामतीत्य वै॥ ९७

गते रामे सभार्ये तु सह भ्रात्रा ससारथौ।
अयोध्यामवसन् भूप नष्टशोभां सुदुःखिताः॥ ९८

नष्टसंज्ञो दशरथः श्रुत्वा वचनमप्रियम्।
रामप्रवासजननं कैकेय्या मुखनिस्सृतम्॥ ९९

लब्धसंज्ञः क्षणाद्राजा रामरामेति चुक्रुशे।
कैकेय्युवाच भूपालं भरतं चाभिषेचय॥ १००

सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामचन्द्रो वनं गतः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो राजा दशरथस्तदा॥ १०१

विहाय देहं दुःखेन देवलोकं गतस्तदा।
ततस्तस्य महापुर्य्यामयोध्यायामरिंदम॥ १०२

रुरुदुर्दुःखशोकार्त्ता जनाः सर्वे च योषितः।
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी कष्टकारिणी॥ १०३

भगवान् रामको देखते ही वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—'भगवन्! मैं क्या सेवा करूँ'॥ ९०½॥

[यों कहकर गुहने सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका सादर पूजन एवं सत्कार किया। इसके बाद सबेरे सारथि और रथको लौटाकर वे गङ्गाजीके तटपर गये और पुनः कहने लगे—] राजन्! जिन्हें आपके पूर्वज महाराज भगीरथ पूर्वकालमें बड़ी तपस्या करके पृथ्वीपर ले आये थे, जो समस्त पापहारिणी और कल्याणकारिणी हैं, अनेकानेक मुनिजन जिनका सेवन करते हैं, जिनमें कूर्म और मत्स्य आदि जल-जन्तु भरे रहते हैं, जो ऊँची-ऊँची लहरोंसे सम्पन्न एवं स्फटिकमणिके समान स्वच्छ जल बहानेवाली हैं, उन पुण्यसलिला गङ्गाजीको गुहके द्वारा लायी हुई नावसे पार करके महान् कान्तिमान् भगवान् श्रीराम भरद्वाज मुनिके शुभ आश्रमपर गये॥ ९१—९३½॥

वह आश्रम प्रयागमें था। श्रीरामचन्द्रजीने सीता तथा भाई लक्ष्मणके साथ उस प्रयागतीर्थमें विधिवत् स्नान करके, वहीं भरद्वाज ऋषिके आश्रममें उनसे सम्मान प्राप्तकर रात्रिमें विश्राम किया। फिर निर्मल प्रभातकाल होनेपर श्रीराम तपस्वीवेष धारणकर, भरद्वाज मुनिसे आज्ञा ले, उन्हींके बताये हुए मार्गसे गङ्गाके पार हो, धीरे-धीरे नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे आच्छन्न परम उत्तम पावन तीर्थ चित्रकूटको गये॥ ९४—९७॥

राजन्! इधर सीता-लक्ष्मण और सारथिके सहित रामचन्द्रजीके चले जानेपर अयोध्यावासीजन बहुत दुःखी होकर शोभाशून्य अयोध्यानगरीमें रहने लगे। राजा दशरथ तो कैकेयीके मुखसे निर्गत श्रीरामको वनवास देनेवाले अप्रिय वचनको सुनते ही मूर्च्छित हो गये थे। कुछ देर बाद जब राजाको होश हुआ, तब वे उच्चस्वरसे 'राम! राम!' पुकारने लगे। तब कैकेयीने भूपालसे कहा—'राम तो सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें चले गये; अब आप भरतका राज्याभिषेक कीजिये।' यह सुनते ही राजा दशरथ पुत्रशोकसे संतप्त हो, दुःखके मारे शरीर त्यागकर देवलोकको चले गये॥ ९८—१०१½॥

शत्रुदमन! तब उनकी महानगरी अयोध्यामें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष दुःख और शोकसे पीड़ित हो विलाप करने लगे। कौशल्या, सुमित्रा तथा कष्टकारिणी

परिवार्य मृतं तत्र रुरुदुस्ताः पतिं ततः।
ततः पुरोहितस्तत्र वसिष्ठः सर्वधर्मवित्॥ १०४

तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य मृतं राजकलेवरम्।
दूतं वै प्रेषयामास सहमन्त्रिगणैः स्थितः॥ १०५

स गत्वा यत्र भरतः शत्रुघ्नेन सह स्थितः।
तत्र प्राप्य तथा वार्तां संनिवर्त्य नृपात्मजौ॥ १०६

तावानीय ततः शीघ्रमयोध्यां पुनरागतः।
क्रूराणि दृष्ट्वा भरतो निमित्तानि च वै पथि॥ १०७

विपरीतं त्वयोध्यायामिति मेने स पार्थिवः।
निश्शोभां निर्गतश्रीकां दुःखशोकान्वितां पुरीम्॥ १०८

कैकेय्याग्निविनिर्दग्धामयोध्यां प्रविवेश सः।
दुःखान्विता जनाः सर्वे तौ दृष्ट्वा रुरुदुर्भृशम्॥ १०९

हा तात राम हा सीते लक्ष्मणेति पुनः पुनः।
रुरोद भरतस्तत्र शत्रुघ्नश्च सुदुःखितः॥ ११०

कैकेय्यास्तत्क्षणाच्छ्रुत्वा चुक्रोध भरतस्तदा।
दुष्टा त्वं दुष्टचित्ता च यया रामः प्रवासितः॥ १११

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा राघवः सीतया वनम्।
साहसं किं कृतं दुष्टे त्वया सद्योऽल्पभाग्यया॥ ११२

उद्वास्य सीतया रामं लक्ष्मणेन महात्मना।
ममैव पुत्रं राजानं करोत्विति मतिस्तव॥ ११३

दुष्टाया नष्टभाग्यायाः पुत्रोऽहं भाग्यवर्जितः।
भ्रात्रा रामेण रहितो नाहं राज्यं करोमि वै॥ ११४

यत्र रामो नरव्याघ्रः पद्मपत्रायतेक्षणः।
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञो मतिमान् बन्धुवत्सलः॥ ११५

सीता च यत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता॥ ११६

कैकेयी भी अपने मृत पतिको चारों ओरसे घेरकर रोने लगीं॥ १०२-१०३½॥

तब सब धर्मोंको जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजीने वहाँ आकर सबको शान्त किया और राजाके मृत शरीरको तेलसे भरी हुई नौकामें रखवाकर, मन्त्रिगणोंके साथ विचार करके, भरत-शत्रुघ्नको बुलानेके लिये दूत भेजा। वह दूत जहाँ शत्रुघ्नके साथ भरतजी थे, वहाँ गया और जितना उसे बताया गया था, उतना ही संदेश सुनाकर, उन दोनों राजकुमारोंको वहाँसे लौटाकर, उन्हें साथ ले, शीघ्र ही अयोध्यामें लौट आया। राजा भरत मार्गमें घोर अपशकुन देख मन-ही-मन यह जान गये कि 'अयोध्यामें कोई विपरीत घटना घटित हुई है।' फिर जो कैकेयीरूपी अग्निसे दग्ध होकर शोभाहीन, निस्तेज और दुःख-शोकसे परिपूर्ण हो गयी थी, उस अयोध्यापुरीमें भरतजीने प्रवेश किया। उस समय भरत और शत्रुघ्नको देख सभी लोग दुःखी हो 'हा तात! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' इस प्रकार बारम्बार पुकारते हुए बहुत विलाप करने लगे। यह देख भरत और शत्रुघ्न भी दुःखी होकर रोने लगे॥ १०४—११०॥

उस समय कैकेयीके मुखसे तत्काल सारा वृत्तान्त सुनकर भरतजी उसके ऊपर बहुत ही कुपित हुए और बोले—'अरी! तू तो बड़ी दुष्टा है। तेरे चित्तमें दुष्टतापूर्ण विचार भरा हुआ है। हाय! जिसने श्रीरामको वनवास दे दिया, जिसके कारण भाई लक्ष्मण और देवी सीताके साथ श्रीरघुनाथजीको वनमें जानेको विवश होना पड़ा, उससे बढ़कर दुष्टा कौन स्त्री होगी? अरी दुष्टे! ओ मन्दभागिनी! तूने तत्काल ऐसा दुस्साहस कैसे किया? तूने सोचा होगा कि महात्मा लक्ष्मण और साध्वी सीताके साथ रामको घरसे निकालकर महाराजा दशरथ मेरे ही पुत्रको राजा बना देंगे। (धिक्कार है तेरी इस कुबुद्धिको!) आह! मैं कितना भाग्यहीन हूँ, जो तुझ-जैसी अभागिनी दुष्टा स्त्रीका पुत्र हुआ। किंतु तू निश्चय जान, मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे अलग रहकर राज्य नहीं करूँगा। जहाँ मनुष्योंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा भाइयोंपर स्नेह रखनेवाले पूज्य भ्राता कमलदललोचन श्रीरामचन्द्रजी गये हैं, जहाँ नियम और व्रतका आचरण करनेवाली, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी पतिव्रता विदेहराजकुमारी सीताजी विद्यमान हैं

लक्ष्मणश्च महावीर्यो गुणवान् भ्रातृवत्सलः।
तत्र यास्यामि कैकेयि महत्पापं त्वया कृतम्॥ ११७

राम एव मम भ्राता ज्येष्ठो मतिमतां वरः।
स एव राजा दुष्टात्मे भृत्योऽहं तस्य वै सदा॥ ११८

इत्युक्त्वा मातरं तत्र रुरोद भृशदुःखितः।
हा राजन् पृथिवीपाल मां विहाय सुदुःखितम्॥ ११९

क्व गतोऽस्यद्य वै तात किं करोमीह तद्वद।
भ्राता पित्रा समः क्वास्ते ज्येष्ठो मे करुणाकरः॥ १२०

सीता च मातृतुल्या मे क्व गतो लक्ष्मणश्च ह।
इत्येवं विलपन्तं तं भरतं मन्त्रिभिः सह॥ १२१

वसिष्ठो भगवानाह कालकर्मविभागवित्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स त्वं न शोकं कर्तुमर्हसि॥ १२२

कर्मकालवशादेव पिता ते स्वर्गमास्थितः।
तस्य संस्कारकार्याणि कर्माणि कुरु शोभन॥ १२३

रामोऽपि दुष्टनाशाय शिष्टानां पालनाय च।
अवतीर्णो जगत्स्वामी स्वांशेन भुवि माधवः॥ १२४

प्रायस्तत्रास्ति रामेण कर्तव्यं लक्ष्मणेन च।
यत्रासौ भगवान् वीरः कर्मणा तेन चोदितः॥ १२५

तत्कृत्वा पुनरायाति रामः कमललोचनः।
इत्युक्तो भरतस्तेन वसिष्ठेन महात्मना॥ १२६

संस्कारं लम्भयामास विधिदृष्टेन कर्मणा।
अग्निहोत्राग्निना दग्ध्वा पितुर्देहं विधानतः॥ १२७

स्नात्वा सरय्वाः सलिले कृत्वा तस्योदकक्रियाम्।
शत्रुघ्नेन सह श्रीमान्मातृभिर्बान्धवैः सह॥ १२८

तस्यौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मन्त्रिणा मन्त्रिनायकः।
हस्त्यश्वरथपत्तीभिः सह प्रायान्महामतिः॥ १२९

और जहाँ भाईमें भक्ति रखनेवाले, सद्गुणसम्पन्न, महान् पराक्रमी लक्ष्मणजी गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा। कैकेयि! तूने रामको वनवास देकर महान् पाप किया है। दुष्टहृदये! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, वे ही राजा होनेके अधिकारी हैं। मैं तो सदा उनका दास हूँ'॥ १११—११८॥

मातासे यों कहकर भरतजी अत्यन्त दुःखी हो, वहाँ फूट-फूटकर रोने लगे और विलाप करने लगे—'हा राजन्! हा वसुधाप्रतिपालक! हा तात! मुझ अत्यन्त दुःखी बालकको छोड़कर आप कहाँ चले गये? बताइये, मैं अब यहाँ क्या करूँ? पिताके तुल्य दया करनेवाले मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम कहाँ हैं? माताके समान पूजनीया सीता कहाँ हैं और मेरा प्यारा भाई लक्ष्मण कहाँ चला गया?'॥ ११९-१२०½॥

भरतको इस प्रकार विलाप करते देख काल और कर्मके विभागको जाननेवाले भगवान् वसिष्ठजी मन्त्रियोंके साथ वहाँ आकर बोले—'बेटा! उठो, उठो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। भद्र! काल और कर्मके वशीभूत होकर ही तुम्हारे पिता स्वर्गवासी हुए हैं; अब तुम उनके अन्त्येष्टिसंस्कार आदि कर्म करो। भगवान् श्रीराम साक्षात् लक्ष्मीपति नारायण हैं। वे जगदीश्वर दुष्टोंका नाश और साधुपुरुषोंका पालन करनेके लिये ही अपने अंशसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। वनमें श्रीराम और लक्ष्मणके द्वारा बहुत-से कार्य होनेवाले हैं। वहाँ वीरवर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं कर्तव्यकर्मोंसे प्रेरित होकर रहेंगे और उन्हें पूर्ण करके यहाँ लौट आयेंगे'॥ १२१—१२५½॥

उन महात्मा वसिष्ठजीके यों कहनेपर भरतजीने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार किया। उस समय उन्होंने अग्निहोत्रकी अग्निसे पिताके शवका विधिपूर्वक दाह किया। फिर सरयूके जलमें स्नान करके श्रीमान् भरतने भाई शत्रुघ्न, सब माताओं तथा अन्य बन्धुजनोंके साथ परलोकगत पिताके लिये तिलसहित जलकी अञ्जलि दी॥ १२६—१२८॥

इस प्रकार पिताका और्ध्वदैहिक संस्कार करके मन्त्रियोंके अधिपति साधुश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् भरतजी अपने मन्त्रियों तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल, सेनाओंके साथ (माताओं तथा बन्धुजनोंको भी साथ

भरतो राममन्वेष्टुं राममार्गेण सत्तमः।
तमायान्तं महासेनं रामस्यानुविरोधिनम्॥ १३०

मत्वा तं भरतं शत्रुं रामभक्तो गुहस्तदा।
स्वं सैन्यं वर्तुलं कृत्वा संनद्धः कवची रथी॥ १३१

महाबलपरीवारो रुरोध भरतं पथि॥ १३२

सभ्रातृकं सभार्यं मे रामं स्वामिनमुत्तमम्।
प्रापयस्त्वं वनं दुष्ट साम्प्रतं हन्तुमिच्छसि॥ १३३

गमिष्यसि दुरात्मंस्त्वं सेनया सह दुर्मते।
इत्युक्तो भरतस्तत्र गुहेन नृपनन्दनः॥ १३४

तमुवाच विनीतात्मा रामायाथ कृताञ्जलिः।
यथा त्वं रामभक्तोऽसि तथाहमपि भक्तिमान्॥ १३५

प्रोषिते मयि कैकेय्या कृतमेतन्महामते।
रामस्यानयनार्थाय व्रजाम्यद्य महामते॥ १३६

सत्यपूर्वं गमिष्यामि पन्थानं देहि मे गुह।
इति विश्वासमानीय जाह्नवीं तेन तारितः॥ १३७

नौकावृन्दैरनेकैस्तु स्नात्वासौ जाह्नवीजले।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्तो भरतस्तं महामुनिम्॥ १३८

प्रणम्य शिरसा तस्मै यथावृत्तमुवाच ह।
भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृशम्॥ १३९

दुःखं न तावत् कर्तव्यं रामार्थेऽपि त्वयाधुना।
वर्तते चित्रकूटेऽसौ रामः सत्यपराक्रमः॥ १४०

त्वयि तत्र गते वापि प्रायोऽसौ नागमिष्यति।
तथापि तत्र गच्छ त्वं यदसौ वक्ति तत्कुरु॥ १४१

रामस्तु सीतया सार्धं वनखण्डे स्थितः शुभे।
लक्ष्मणस्तु महावीर्यो दुष्टालोकनतत्परः॥ १४२

ले) श्रीरामचन्द्रजीका अन्वेषण करनेके लिये जिस मार्गसे वे गये थे, उसी मार्गसे चले। उस समय भरत (और शत्रुघ्न)-को इतनी बड़ी सेनाके साथ आते देख, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीका विरोधी शत्रु समझकर रामभक्त गुहने युद्धके लिये सुसज्जित हो, अपनी सेना गोलाकार खड़ी की और कवच धारणकर, रथारूढ़ हो, उस विशाल सेनासे घिरे हुए उसने मार्गमें भरतको रोक दिया। उसने कहा—'दुष्ट! दुरात्मन्! दुर्बुद्धे! तूने मेरे श्रेष्ठ स्वामी श्रीरामको भाई और पत्नीसहित वनमें तो भिजवा ही दिया; क्या अब उन्हें मारना भी चाहते हो, जो (इतनी बड़ी) सेनाके साथ वहाँ जा रहे हो?'॥ १२९—१३३½॥

गुहके यों कहनेपर राजकुमार भरत श्रीरामके उद्देश्यसे हाथ जोड़कर विनययुक्त होकर उससे बोले—'गुह! जैसे तुम श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हो, वैसे ही मैं भी उनमें भक्ति रखता हूँ। महामते! मैं नगरसे बाहर (मामाके घर) चला गया था, उस समय कैकेयीने यह अनर्थ कर डाला। महाबुद्धे! आज मैं श्रीरामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ। तुमसे यह सत्य बात बताकर वहाँ जाना चाहता हूँ। तुम मुझे मार्ग दे दो'॥ १३४—१३६½॥

इस प्रकार विश्वास दिलानेपर गुह उन्हें गङ्गातट-पर ले आया और झुंड-की-झुंड नौकाएँ मँगाकर उनके द्वारा उन सबको पार कर दिया। फिर गङ्गाजीके जलमें स्नान करके भरतजी भरद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँचे और उन महामुनिके चरणोंमें मस्तक झुका, प्रणाम करके उन्होंने उनसे अपना यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया॥ १३७-१३८½॥

भरद्वाजजीने भी उनसे कहा—'भरत! कालके ही प्रभावसे ऐसा काण्ड घटित हुआ है। अब तुम्हें श्रीरामके लिये भी खेद नहीं करना चाहिये। सत्यपराक्रमी वे श्रीरामचन्द्रजी इस समय चित्रकूटमें हैं। वहाँ तुम्हारे जानेपर भी वे प्रायः नहीं आ सकेंगे; तथापि तुम वहाँ जाओ और जैसे वे कहें, वैसे ही करो। श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ एक सुन्दर वनखण्डीमें निवास करते हैं और महान् पराक्रमी लक्ष्मण दुष्ट जीवोंपर दृष्टि रखते हैं—उनकी रक्षामें तत्पर रहते हैं'॥ १३९—१४२॥

इत्युक्तो भरतस्तत्र भरद्वाजेन धीमता।
उत्तीर्य यमुनां यातश्चित्रकूटं महानगम्॥ १४३

स्थितोऽसौ दृष्टवान्दूरात्सधूलीं चोत्तरां दिशम्।
रामाय कथयित्वाऽऽस तदादेशात्तु लक्ष्मणः॥ १४४

वृक्षमारुह्य मेधावी वीक्षमाणः प्रयत्नतः।
स ततो दृष्टवान् हृष्टामायान्तीं महतीं चमूम्॥ १४५

हस्त्यश्वरथसंयुक्तां दृष्ट्वा राममथाब्रवीत्।
हे भ्रातस्त्वं महाबाहो सीतापार्श्वे स्थिरो भव॥ १४६

भूपोऽस्ति बलवान् कश्चिद्धस्त्यश्वरथपत्तिभिः।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ १४७

रामस्तमब्रवीद्वीरो वीरं सत्यपराक्रमः।
प्रायेण भरतोऽस्माकं द्रष्टुमायाति लक्ष्मण॥ १४८

इत्येवं वदतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः।
आरात्संस्थाप्य सेनां तां भरतो विनयान्वितः॥ १४९

ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सार्धं रुदन्नागत्य पादयोः।
रामस्य निपपाताथ वैदेह्या लक्ष्मणस्य च॥ १५०

मन्त्रिणो मातृवर्गश्च स्निग्धबन्धुसुहृज्जनाः।
परिवार्य ततो रामं रुरुदुः शोककातराः॥ १५१

स्वर्यातं पितरं ज्ञात्वा ततो रामो महामतिः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्याथ समन्वितः॥ १५२

स्नात्वा मलापहे तीर्थे दत्त्वा च सलिलाञ्जलिम्।
मात्रादीनभिवाद्याथ रामो दुःखसमन्वितः॥ १५३

उवाच भरतं राजन् दुःखेन महतान्वितम्।
अयोध्यां गच्छ भरत इतः शीघ्रं महामते॥ १५४

राज्ञा विहीनां नगरीं अनाथां परिपालय।
इत्युक्तो भरतः प्राह रामं राजीवलोचनम्॥ १५५

त्वामृते पुरुषव्याघ्र न यास्येऽहमितो ध्रुवम्।
यत्र त्वं तत्र यास्यामि वैदेही लक्ष्मणो यथा॥ १५६

बुद्धिमान् भरद्वाजजीके यों कहनेपर भरतजी यमुना पार करके महान् पर्वत चित्रकूटपर गये। वहाँ खड़े हुए लक्ष्मणजीने दूरसे उत्तर दिशामें धूल उड़ती देख श्रीरामचन्द्रजीको सूचित किया। फिर उनकी आज्ञासे वृक्षपर चढ़कर बुद्धिमान् लक्ष्मणजी प्रयत्नपूर्वक उधर देखने लगे। तब उन्हें वहाँ बहुत बड़ी सेना आती दिखायी दी, जो हर्ष एवं उत्साहसे भरी जान पड़ती थी। हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त उस सेनाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामसे बोले—'भैया! तुम सीताके पास स्थिरतापूर्वक बैठे रहो। महाबाहो! कोई महाबली राजा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आ रहा है'॥ १४३—१४६½॥

महात्मा लक्ष्मणके ऐसे वचन सुनकर सत्यपराक्रमी वीरवर श्रीराम अपने उस वीर भ्रातासे बोले—'लक्ष्मण! मुझे तो प्रायः यही जान पड़ता है कि भरत ही हम लोगोंसे मिलनेके लिये आ रहे हैं।' विदितात्मा भगवान् श्रीराम जिस समय यों कह रहे थे, उसी समय विनयशील भरतजी वहाँ पहुँचे और सेनाको कुछ दूरीपर ठहराकर स्वयं ब्राह्मणों और मन्त्रियोंके साथ निकट आ, सीता और लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके चरणोंपर रोते हुए गिर पड़े। फिर मन्त्री, माताएँ, स्नेही बन्धु तथा मित्रगण श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर शोकमग्न हो रोने लगे॥ १४७—१५१॥

तदनन्तर महामति श्रीरामने अपने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार पाकर भ्राता लक्ष्मण और जानकीके साथ वहाँके पापनाशक तीर्थमें स्नान करके जलाञ्जलि दी। राजन्! फिर माता आदि गुरुजनोंको प्रणाम करके रामचन्द्रजी दुःखी हो अत्यन्त खेदमें पड़े हुए भरतसे बोले—'महामते भरत! तुम अब यहाँसे शीघ्र अयोध्याको चले जाओ और राजासे हीन हुई उस अनाथ नगरीका पालन करो।' उनके यों कहनेपर भरतने कमललोचन रामसे कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! यह निश्चय है कि मैं आपको साथ लिये बिना यहाँसे नहीं जाऊँगा। जहाँ आप जायँगे, वहीं सीता-लक्ष्मणकी भाँति मैं भी चलूँगा'॥ १५२—१५६॥

इत्याकर्ण्य पुनः प्राह भरतं पुरतः स्थितम्।
नृणां पितृसमो ज्येष्ठः स्वधर्ममनुवर्तिनाम्॥ १५७

यथा न लङ्घ्यं वचनं मया पितृमुखेरितम्।
तथा त्वया न लङ्घ्यं स्याद्वचनं मम सत्तम॥ १५८

मत्समीपादितो गत्वा प्रजास्त्वं परिपालय।
द्वादशाब्दिकमेतन्मे व्रतं पितृमुखेरितम्॥ १५९

तदरण्ये चरित्वा तु आगमिष्यामि तेऽन्तिकम्।
गच्छ तिष्ठ ममादेशे न दुःखं कर्तुमर्हसि॥ १६०

इत्युक्तो भरतः प्राह बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
यथा पिता तथा त्वं मे नात्र कार्या विचारणा॥ १६१

तवादेशान्मया कार्यं देहि त्वं पादुके मम।
नन्दिग्रामे वसिष्येऽहं पादुके द्वादशाब्दिकम्॥ १६२

त्वद्वेषमेव मद्वेषं त्वद्व्रतं मे महाव्रतम्।
त्वं द्वादशाब्दिकादूर्ध्वं यदि नायासि सत्तम॥ १६३

ततो हविर्यथा चाग्नौ प्रधक्ष्यामि कलेवरम्।
इत्येवं शपथं कृत्वा भरतो हि सुदुःखितः॥ १६४

बहु प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्य च राघवम्।
पादुके शिरसा स्थाप्य भरतः प्रस्थितः शनैः॥ १६५

स कुर्वन् भ्रातुरादेशं नन्दिग्रामे स्थितो वशी।
तपस्वी नियताहारः शाकमूलफलाशनः॥ १६६

जटाकलापं शिरसा च बिभ्रत्
त्वचश्च वार्क्षीः किल वन्यभोजी।
रामस्य वाक्यादरतो हृदि स्थितं
बभार भूभारमनिन्दितात्मा॥ १६७

यह सुनकर श्रीरामने अपने सामने खड़े हुए भरतसे पुनः कहा—'साधुश्रेष्ठ भरत! अपने धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान पूज्य है। जिस प्रकार मुझे पिताके मुखसे निकले हुए वचनका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, वैसे ही तुम्हें भी मेरे वचनोंका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अब तुम यहाँ मेरे निकटसे जाकर प्रजाजनका पालन करो। पिताके मुखसे कहा हुआ जो यह बारह वर्षोंके वनवासका व्रत मैंने स्वीकार किया है, उसका वनमें पालन करके मैं पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जाओ, मेरी आज्ञाके पालनमें लग जाओ; तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये'॥ १५७—१६०॥

उनके यों कहनेपर भरतने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'भैया! इसके सम्बन्धमें मुझे कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरे लिये जैसे पिताजी थे, वैसे ही आप हैं। अब मैं आपके आदेशके अनुसार ही कार्य करूँगा; किंतु आप अपनी दोनों चरणपादुकाएँ मुझे दे दें। मैं इन्हीं पादुकाओंका आश्रय ले नन्दिग्राममें निवास करूँगा और आपकी ही भाँति बारह वर्षोंतक व्रतका पालन करूँगा। अब आपके वेषके समान ही मेरा वेष होगा और आपका जो व्रत है, वही मेरा भी महान् व्रत होगा। साधुशिरोमणे! यदि आप बारह वर्षोंके व्रतका पालन करनेके बाद तुरंत नहीं पधारेंगे तो मैं अग्निमें हविष्यकी भाँति अपने शरीरको होम दूँगा।' अत्यन्त दुःखी भरतजीने इस प्रकार शपथ करके भगवान् रामकी अनेक बार प्रदक्षिणा की, बारंबार उन्हें प्रणाम किया और उनकी चरणपादुकाएँ अपने सिरपर रखकर वे वहाँसे धीरे-धीरे चल दिये॥ १६१—१६५॥

भरतजी अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके, शाक और मूल-फलादिका नियमित आहार करते हुए, तपोनिष्ठ हो, भ्राताके आदेशका पालन करते हुए नन्दिग्राममें रहने लगे। विशुद्ध हृदयवाले भरतजी अपने सिरपर जटा धारण किये और अङ्गोंमें वल्कल पहने, वन्य फलोंका ही आहार करते थे। वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंमें श्रद्धा रखनेके कारण अपने ऊपर पड़े पृथ्वीके शासनका भार ढोने लगे॥ १६६-१६७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे श्रीरामप्रादुर्भावे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

श्रीरामका जयन्तको दण्ड देना; शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसे मिलना; शूर्पणखाका अनादर; सीताहरण; जटायुवध और शबरीको दर्शन देना

मार्कण्डेय उवाच

गतेऽथ भरते तस्मिन् रामः कमललोचनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भार्यया सीतया सह॥ १

शाकमूलफलाहारो विचचार महावने।
कदाचिल्लक्ष्मणमृते रामदेवः प्रतापवान्॥ २

चित्रकूटवनोद्देशे वैदेह्युत्सङ्गमाश्रितः।
सुष्वाप स मुहूर्तं तु ततः काको दुरात्मवान्॥ ३

सीताभिमुखमभ्येत्य विददार स्तनान्तरम्।
विदार्य वृक्षमारुह्य स्थितोऽसौ वायसाधमः॥ ४

ततः प्रबुद्धो रामोऽसौ दृष्ट्वा रक्तं स्तनान्तरे।
शोकाविष्टां तु सीतां तामुवाच कमलेक्षणः॥ ५

वद स्तनान्तरे भद्रे तव रक्तस्य कारणम्।
इत्युक्ता सा च तं प्राह भर्तारं विनयान्विता॥ ६

पश्य राजेन्द्र वृक्षाग्रे वायसं दुष्टचेष्टितम्।
अनेनैव कृतं कर्म सुप्ते त्वयि महामते॥ ७

रामोऽपि दृष्टवान् काकं तस्मिन् क्रोधमथाकरोत्।
इषीकास्त्रं समाधाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमन्त्रितम्॥ ८

काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्भयान्वितः।
स त्विन्द्रस्य सुतो राजन्निन्द्रलोकं विवेश ह॥ ९

रामास्त्रं प्रज्वलद्दीप्तं तस्यानु प्रविवेश वै।
विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवैः सह समन्वितः॥ १०

निष्क्रामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम्।
ततोऽसौ सर्वदेवैस्तु देवलोकाद्बहिः कृतः॥ ११

पुनः सोऽप्यपतद्रामं राजानं शरणं गतः।
पाहि राम महाबाहो अज्ञानादपकारिणम्॥ १२

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भरतजीके अयोध्या लौट जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी अपनी भार्या सीता और भाई लक्ष्मणके साथ शाक और मूल-फल आदिके आहारसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस महान् वनमें विचरने लगे। एक दिन परम प्रतापी भगवान् राम लक्ष्मणको साथ न ले जाकर चित्रकूट पर्वतके वनमें सीताजीकी गोदमें कुछ देरतक सोये रहे। इतनेमें ही एक दुष्ट कौएने सीताके सम्मुख आ उनके स्तनोंके बीच चोंच मारकर घाव कर दिया। घाव करके वह अधम काक वृक्षपर जा बैठा॥ १—४॥

तदनन्तर जब कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीकी नींद खुली, तब उन्होंने देखा, सीताके स्तनोंसे रक्त बह रहा है और वे शोकमें डूबी हुई हैं। यह देख उन्होंने सीतासे पूछा—'कल्याणि! बताओ, तुम्हारे स्तनोंके बीचसे रक्त बहनेका क्या कारण है?' उनके यों कहनेपर सीताने अपने स्वामीसे विनयपूर्वक कहा—'राजेन्द्र! महामते! वृक्षकी शाखापर बैठे हुए इस दुष्ट कौएको देखिये; आपके सो जानेपर इसीने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य किया है'॥ ५—७॥

रामचन्द्रजीने भी उस कौएको देखा और उसपर बहुत ही क्रोध किया। फिर सींकका बाण बनाकर उसे ब्रह्मास्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया और उस कौएको लक्ष्य करके चला दिया। यह देख वह भयभीत होकर भागा। राजन्! कहते हैं, वह काक वास्तवमें इन्द्रका पुत्र जयन्त था, अतः भागकर इन्द्रलोकमें घुस गया। उसके साथ ही श्रीरामचन्द्रजीके उस प्रज्वलित एवं देदीप्यमान बाणने भी उसका पीछा करते हुए इन्द्रलोकमें प्रवेश किया। यह सब वृत्तान्त जान, देवराज इन्द्रने देवताओंके साथ मिलकर विचार किया तथा श्रीरामचन्द्रजीका अपराध करनेवाले उस दुष्ट पुत्रको वहाँसे निकाल दिया। जब सब देवताओंने उसे देवलोकसे बाहर कर दिया, तब वह पुनः राजा श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आया और बोला—'महाबाहो श्रीराम! मैंने अज्ञानवश अपराध किया है, मुझे बचाइये'॥ ८—१२॥

इति ब्रुवन्तं तं प्राह रामः कमललोचनः।
अमोघं च ममैवास्त्रमङ्गमेकं प्रयच्छ वै॥ १३

ततो जीवसि दुष्ट त्वमपकारो महान् कृतः।
इत्युक्तोऽसौ स्वकं नेत्रमेकमस्त्राय दत्तवान्॥ १४

अस्त्रं तन्नेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ।
ततः प्रभृति काकानां सर्वेषामेकनेत्रता॥ १५

चक्षुषैकेन पश्यन्ति हेतुना तेन पार्थिव।
उषित्वा तत्र सुचिरं चित्रकूटे स राघवः॥ १६

जगाम दण्डकारण्यं नानामुनिनिषेवितम्।
सभ्रातृकः सभार्यश्च तापसं वेषमास्थितः॥ १७

धनुःपर्वसुपाणिश्च सेषुधिश्च महाबलः।
ततो ददर्श तत्रस्थानम्बुभक्षान्महामुनीन्॥ १८

अश्मकुट्टाननेकांश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
पञ्चाग्निमध्यगानन्यानन्यानुग्रतपश्चरान्॥ १९

तान् दृष्ट्वा प्रणिपत्योच्चै रामस्तैश्चाभिनन्दितः।
ततोऽखिलं वनं दृष्ट्वा रामः साक्षाज्जनार्दनः॥ २०

भ्रातृभार्यासहायश्च सम्प्रतस्थे महामतिः।
दर्शयित्वा तु सीतायै वनं कुसुमितं शुभम्॥ २१

नानाश्चर्यसमायुक्तं शनैर्गच्छन् स दृष्टवान्।
कृष्णाङ्गं रक्तनेत्रं तु स्थूलशैलसमानकम्॥ २२

शुभ्रदंष्ट्रं महाबाहुं संध्याघनशिरोरुहम्।
मेघस्वनं सापराधं शरं संधाय राघवः॥ २३

विव्याध राक्षसं क्रोधाल्लक्ष्मणेन सह प्रभुः।
अन्यैरवध्यं हत्वा तं गिरिगर्ते महातनुम्॥ २४

इस प्रकार कहते हुए जयन्तसे कमललोचन श्रीरामने कहा—'अरे दुष्ट! मेरा अस्त्र अमोघ है, अतः इसके लिये अपना कोई एक अङ्ग दे दे; तभी तू जीवित रह सकता है; क्योंकि तूने बहुत बड़ा अपराध किया है।' उनके यों कहनेपर उसने श्रीरामके उस बाणके लिये अपना एक नेत्र दे दिया। उसके एक नेत्रको भस्म करके वह अस्त्र लौट आया। उसी समयसे सभी कौए एक नेत्रवाले हो गये। राजन्! इसी कारण वे एक आँखसे ही देखते हैं॥ १३—१५½॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई और पत्नीके साथ चिरकालतक चित्रकूटपर निवास करनेके अनन्तर वहाँसे अनेक मुनिजनोंद्वारा सेवित दण्डकारण्यको चल दिये। उस समय वे तपस्वी वेषमें थे, उनके हाथमें धनुष और बाण थे तथा पीठपर तरकस बँधा था। वहाँ जानेपर महाबलवान् श्रीरामने उस वनमें रहनेवाले बड़े-बड़े मुनियोंका दर्शन किया, जिनमेंसे कई लोग केवल जलका आहार करनेवाले थे। कितने ही दन्तहीन होनेसे पत्थरपर कूट-पीसकर आहार ग्रहण करते, इसलिये 'अश्मकुट्ट' कहलाते थे। कुछ तपस्वी दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले होनेसे 'दन्तोलूखली' कहे जाते थे। कुछ पाँच अग्नियोंके बीचमें बैठकर तप करते थे और कुछ महात्मा इससे भी उग्र तपस्यामें तत्पर थे। उनका दर्शन करके श्रीरामने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उन्होंने भी उनका अभिनन्दन किया॥ १६—१९½॥

तत्पश्चात् साक्षात् विष्णुस्वरूप महामति भगवान् श्रीराम वहाँके समस्त वनका अवलोकन करके अपनी भार्या और भाईके साथ आगे बढ़े। वे सीताजीको फूलोंसे सुशोभित तथा नाना आश्चर्योंसे युक्त सुन्दर वन दिखाते हुए जिस समय धीरे-धीरे जा रहे थे, उसी समय उन्होंने सामने एक राक्षस देखा, जिसका शरीर काला और नेत्र लाल थे। वह पर्वतके समान स्थूल था। उसकी दाढ़ें चमकीली, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और केश संध्याकालिक मेघके समान लाल थे। वह घनघोर गर्जना करता हुआ सदा दूसरोंका अपकार किया करता था। उसे देखते ही लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर बाण चढ़ाया तथा उस घोर राक्षसको, जो दूसरोंसे नहीं मारा जा सकता था, बींधकर मार डाला। इस प्रकार उसका वध करके उन्होंने उस महाकाय राक्षसकी लाशको पर्वतके खड्डेमें डाल दिया

शिलाभिश्छाद्य गतवाञ्शरभङ्गाश्रमं ततः।
तं नत्वा तत्र विश्रम्य तत्कथातुष्टमानसः॥ २५

तीक्ष्णाश्रममुपागम्य दृष्टवांस्तं महामुनिम्।
तेनादिष्टेन मार्गेण गत्वागस्त्यं ददर्श ह॥ २६

खड्गं तु विमलं तस्मादवाप रघुनन्दनः।
इषुधिं चाक्षयशरं चापं चैव तु वैष्णवम्॥ २७

ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातृभार्यासमन्वितः।
गोदावर्याः समीपे तु पञ्चवट्यामुवास सः॥ २८

ततो जटायुरभ्येत्य रामं कमललोचनम्।
नत्वा स्वकुलमाख्याय स्थितवान् गृध्रनायकः॥ २९

रामोऽपि तत्र तं दृष्ट्वा आत्मवृत्तं विशेषतः।
कथयित्वा तु तं प्राह सीतां रक्ष महामते॥ ३०

इत्युक्तोऽसौ जटायुस्तु राममालिङ्ग्य सादरम्।
कार्यार्थं तु गते रामे भ्रात्रा सह वनान्तरम्॥ ३१

अहं रक्ष्यामि ते भार्यां स्थीयतामत्र शोभन।
इत्युक्त्वा गतवान्रामं गृध्रराजः स्वमाश्रमम्॥ ३२

समीपे दक्षिणे भागे नानापक्षिनिषेविते।
वसन्तं राघवं तत्र सीतया सह सुन्दरम्॥ ३३

मन्मथाकारसदृशं कथयन्तं महाकथाः।
कृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम्॥ ३४

मदनाक्रान्तहृदया कदाचिद्रावणानुजा।
गायन्ती सुस्वरं गीतं शनैरागत्य राक्षसी॥ ३५

ददर्श राममासीनं कानने सीतया सह।
अथ शूर्पणखा घोरा मायारूपधरा शुभा॥ ३६

निश्शङ्का दुष्टचित्ता सा राघवं प्रत्यभाषत।
भज मां कान्त कल्याणीं भजन्तीं कामिनीमिह॥ ३७

और शिलाओंसे ढँककर वे वहाँसे शरभङ्गमुनिके आश्रमपर गये। वहाँ उन मुनिको प्रणाम करके उनके आश्रमपर कुछ देरतक विश्राम किया और उनके साथ कथा-वार्ता करके वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए॥ २०—२५॥

वहाँसे सुतीक्ष्णमुनिके आश्रमपर जाकर श्रीरामने उन महर्षिका दर्शन किया और कहते हैं, उन्हींके बताये हुए मार्गसे जाकर वे अगस्त्यमुनिसे मिले। वहाँ श्रीरघुनाथजीने उनसे एक निर्मल खड्ग तथा वैष्णव धनुष प्राप्त किये और जिसमें रखा हुआ बाण कभी समाप्त न हो—ऐसा तरकस भी उपलब्ध किया। तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मणके साथ वे अगस्त्य-आश्रमसे आगे जाकर गोदावरीके निकट पञ्चवटीमें रहने लगे। वहाँ जानेपर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीके पास गृध्रराज जटायु आये और उनसे अपने कुलका परिचय देकर खड़े हो गये। उन्हें वहाँ उपस्थित देख श्रीरामने भी अपना सारा वृत्तान्त विशेषरूपसे जनाया और कहा—'महामते! तुम सीताकी रक्षा करते रहो'॥ २६—३०॥

श्रीरामके यों कहनेपर जटायुने आदरपूर्वक उनका आलिङ्गन किया और कहा—'श्रीराम! जब कभी कार्यवश अपने भाई लक्ष्मणके साथ आप किसी दूसरे वनमें चले जायँ, उस समय मैं ही आपकी भार्याकी रक्षा करूँगा; अतः सुन्दर! आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहिये।' श्रीरामसे यों कहकर गृध्रराज पास ही दक्षिण भागमें स्थित अपने आश्रमपर चले आये, जो नाना पक्षियोंद्वारा सेवित था॥ ३१-३२½॥

एक बार यह सुनकर कि कामदेवके समान सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी नाना प्रकारकी महत्त्वपूर्ण कथाएँ कहते हुए अपनी भार्या सीताके साथ पञ्चवटीमें निवास कर रहे हैं, रावणकी छोटी बहिन राक्षसी शूर्पणखा मन-ही-मन कामसे पीड़ित हो गयी और लावण्य आदि गुणोंसे युक्त मायामय सुन्दर रूप बनाकर, मधुर स्वरमें गीत गाती हुई धीरे-धीरे वहाँ आयी। उसने वनमें सीताजीके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखा। तब मायामय सुन्दर रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी दुष्टहृदया शूर्पणखाने निडर होकर श्रीरामसे कहा—'प्रियतम! मैं आपको चाहनेवाली सुन्दरी दासी हूँ। आप मुझ सेविकाको स्वीकार करें। जो

भजमानां त्यजेद्यस्तु तस्य दोषो महान् भवेत्।
इत्युक्तः शूर्पणखया रामस्तामाह पार्थिवः॥ ३८

कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति श्रुत्वा ततः प्राह राक्षसी कामरूपिणी॥ ३९

अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि राघव।
त्यक्त्वैनामनभिज्ञां त्वं सीतां मां भज शोभनाम्॥ ४०

इत्याकर्ण्य वचः प्राह रामस्तां धर्मतत्परः।
परस्त्रियं न गच्छेऽहं त्वमितो गच्छ लक्ष्मणम्॥ ४१

तस्य नात्र वने भार्या त्वामसौ संग्रहीष्यति।
इत्युक्ता सा पुनः प्राह रामं राजीवलोचनम्॥ ४२

यथा स्याल्लक्ष्मणो भर्ता तथा त्वं देहि पत्रकम्।
तथैवमुक्त्वा मतिमान् रामः कमललोचनः॥ ४३

छिन्ध्यस्या नासिकामिति मोक्तव्या नात्र संशयः।
इति रामो महाराजो लिख्य पत्रं प्रदत्तवान्॥ ४४

सा गृहीत्वा तु तत्पत्रं गत्वा तस्मान्मुदान्विता।
गत्वा दत्तवती तद्वल्लक्ष्मणाय महात्मने॥ ४५

तां दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह राक्षसीं कामरूपिणीम्।
न लङ्घ्यं राघववचो मया तिष्ठात्मकश्मले॥ ४६

तां प्रगृह्य ततः खड्गमुद्यम्य विमलं सुधीः।
तेन तत्कर्णनासां तु चिच्छेद तिलकाण्डवत्॥ ४७

छिन्ननासा ततः सा तु रुरोद भृशदुःखिता।
हा दशास्य मम भ्रातः सर्वदेवविमर्दक॥ ४८

हा कष्टं कुम्भकर्णाद्यायाता मे चापदा परा।
हा हा कष्टं गुणनिधे विभीषण महामते॥ ४९

इत्येवमार्ता रुदती सा गत्वा खरदूषणौ।
त्रिशिरसं च सा दृष्ट्वा निवेद्यात्मपराभवम्॥ ५०

पुरुष सेवामें उपस्थित हुई रमणीका त्याग करता है, उसे बड़ा दोष लगता है'॥ ३३—३७½॥

शूर्पणखाके यों कहनेपर पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—'बाले! मेरे तो स्त्री है। तुम मेरे छोटे भाईके पास जाओ।' उनकी बात सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीने कहा—'राघव! मैं रति-कर्ममें बहुत निपुण हूँ और यह सीता अनभिज्ञ है; अतः इसे त्यागकर मुझ सुन्दरीको ही स्वीकार करें'॥ ३८—४०॥

उसकी यह बात सुनकर धर्मपरायण श्रीरामने कहा—'मैं परायी स्त्रीके साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता। तुम यहाँसे लक्ष्मणके निकट जाओ। यहाँ वनमें उसकी स्त्री नहीं है; अतः शायद वह तुम्हें स्वीकार कर लेगा।' उनके यों कहनेपर शूर्पणखा पुनः कमलनयन श्रीरामसे बोली—'अच्छा, आप एक ऐसा पत्र लिखकर दें, जिससे लक्ष्मण मेरा भर्ता (भरण-पोषणका भार लेनेवाला) हो सके।' तब बुद्धिमान् कमलनयन महाराज श्रीरामने 'बहुत अच्छा' कहकर एक पत्र लिखा और उसे दे दिया। उसमें लिखा था—'लक्ष्मण! तुम इसकी नाक काट लो; निस्संदेह ऐसा ही करना। यों ही न छोड़ना'॥ ४१—४४॥

शूर्पणखा वह पत्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे गयी। जाकर उसने महात्मा लक्ष्मणको उसी रूपमें वह पत्र दे दिया। उस कामरूपिणी राक्षसीको देखकर लक्ष्मणने उससे कहा—'कलङ्किनी! ठहर, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' यों कहकर बुद्धिमान् लक्ष्मणने उसे पकड़ लिया और एक चमचमाती हुई तलवार उठाकर तिलवृक्षके काण्ड (पोखो)-के समान उसकी नाक और कान काट लिये॥ ४५—४७॥

नाक कट जानेपर वह बहुत दुःखी हो रोने तथा विलाप करने लगी—'हा! समस्त देवताओंका मान-मर्दन करनेवाले मेरे भाई रावण! आज मुझपर महान् कष्ट आ गया। हा भाई कुम्भकर्ण! मुझपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। हा गुणनिधे महामते विभीषण! मुझे महान् दुःख देखना पड़ा'॥ ४८-४९॥

इस प्रकार आर्तभावसे रोदन करती हुई वह खर-दूषण और त्रिशिराके पास गयी तथा उनसे अपने अपमानकी बात निवेदन करके बोली—

राममाह जनस्थाने भ्रात्रा सह महाबलम्।
ज्ञात्वा ते राघवं क्रुद्धाः प्रेषयामासुरूर्जितान्॥ ५१

चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां बलीयसाम्।
अग्रे निजग्मुस्तेनैव रक्षसां नायकास्त्रयः॥ ५२

रावणेन नियुक्तास्ते पुरैव तु महाबलाः।
महाबलपरीवारा जनस्थानमुपागताः॥ ५३

क्रोधेन महताऽऽविष्टा दृष्ट्वा तां छिन्ननासिकाम्।
रुदतीमश्रुदिग्धाङ्गीं भगिनीं रावणस्य तु॥ ५४

रामोऽपि तद्बलं दृष्ट्वा राक्षसानां बलीयसाम्।
संस्थाप्य लक्ष्मणं तत्र सीताया रक्षणं प्रति॥ ५५

गत्वा तु प्रहितैस्तत्र राक्षसैर्बलदर्पितैः।
चतुर्दशसहस्रं तु राक्षसानां महाबलम्॥ ५६

क्षणेन निहतं तेन शरैरग्निशिखोपमैः।
खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः॥ ५७

त्रिशिराश्च महारोषाद् रणे रामेण पातितः।
हत्वा तान् राक्षसान् दुष्टान् रामश्चाश्रममाविशत्॥ ५८

शूर्पणखा च रुदती रावणान्तिकमागता।
छिन्ननासां च तां दृष्ट्वा रावणो भगिनीं तदा॥ ५९

मारीचं प्राह दुर्बुद्धिः सीताहरणकर्मणि।
पुष्पकेण विमानेन गत्वाहं त्वं च मातुल॥ ६०

जनस्थानसमीपे तु स्थित्वा तत्र ममाज्ञया।
सौवर्णमृगरूपं त्वमास्थाय तु शनैः शनैः॥ ६१

गच्छ त्वं तत्र कार्यार्थं यत्र सीता व्यवस्थिता।
दृष्ट्वा सा मृगपोतं त्वां सौवर्णं त्वयि मातुल॥ ६२

स्पृहां करिष्यते रामं प्रेषयिष्यति बन्धने।
तद्वाक्यात्तत्र गच्छन्तं धावस्व गहने वने॥ ६३

लक्ष्मणस्यापकर्षार्थं वक्तव्यं वागुदीरणम्।
ततः पुष्पकमारुह्य मायारूपेण चाप्यहम्॥ ६४

तां सीतामहमानेष्ये तस्यामासक्तमानसः।
त्वमपि स्वेच्छया पश्चादागमिष्यसि शोभन॥ ६५

'महाबली श्रीराम इस समय जनस्थानमें अपने भाई लक्ष्मणके साथ रहते हैं।' श्रीरामका पता पाकर वे तीनों बहुत ही कुपित हुए और उनके साथ युद्धके लिये उन्होंने चौदह हजार प्रतापी एवं बलवान् राक्षसोंको भेजा तथा वे तीनों निशाचर-नायक स्वयं भी उस सेनाके साथ आगे-आगे चले। उन महाबलवान् राक्षसोंको रावणने वहाँ पहलेसे ही नियुक्त कर रखा था। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ जनस्थानमें आये। रावणकी बहिन शूर्पणखा नाक कट जानेसे बहुत रो रही थी। उसके सारे अङ्ग आँसुओंसे भीग गये थे। उसकी वह दुर्दशा देख वे खर-दूषण आदि राक्षस अत्यन्त कुपित हो उठे थे॥ ५०—५४॥

श्रीरामने भी बलवान् राक्षसोंकी उस सेनाको देख लक्ष्मणको सीताकी रक्षामें उसी स्थानमें रोक दिया और अपने साथ युद्धके लिये वहाँ भेजे गये उन बलाभिमानी राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। अग्निकी ज्वालाके समान दीप्तिमान् बाणोंद्वारा उन्होंने चौदह हजार राक्षसोंकी प्रबल सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। साथ ही खर और महाबली दूषणका भी वध किया। इसी प्रकार त्रिशिराको भी श्रीरामने अत्यन्त रोषपूर्वक रणक्षेत्रमें मार गिराया। इस तरह उन सभी दुष्ट राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी अपने आश्रममें लौट आये॥ ५५—५८॥

तब शूर्पणखा रोती हुई रावणके पास आयी। दुर्बुद्धि रावणने अपनी बहिनकी नाक कटी देख सीताको हर लानेके उद्देश्यसे मारीचसे कहा—'मामा! हम और तुम पुष्पकविमानसे चलकर जनस्थानके पास ठहरें। वहाँसे तुम मेरी आज्ञाके अनुसार सोनेके मृगका वेष धारणकर धीरे-धीरे मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये उस स्थानपर जाना, जहाँ सीता रहती है। मामा! वह जब तुम्हें सुवर्णमय मृगशावकके रूपमें देखेगी, तब तुम्हें लेनेकी इच्छा करेगी और श्रीरामको तुम्हें बाँध लानेके लिये भेजेगी। जब सीताकी बात मानकर वे तुम्हें बाँधने चलें, तब तुम उनके सामनेसे गहन वनमें भाग जाना। फिर लक्ष्मणको भी उधर ही खींचनेके लिये उच्चस्वरसे [हा भाई लक्ष्मण! इस प्रकार] कातर वचन बोलना। तत्पश्चात् मैं भी मायामय वेष बनाकर, पुष्पक विमानपर आरूढ हो, उस असहाया सीताको हर लाऊँगा; क्योंकि मेरा मन उसमें आसक्त हो गया है। फिर भद्र! तुम भी स्वेच्छानुसार चले आना'॥ ५९—६५॥

इत्युक्ते रावणेनाथ मारीचो वाक्यमब्रवीत्।
त्वमेव गच्छ पापिष्ठ नाहं गच्छामि तत्र वै॥ ६६

पुरैवानेन रामेण व्यथितोऽहं मुनेर्मखे।
इत्युक्तवति मारीचे रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥ ६७

मारीचं हन्तुमारेभे मारीचोऽप्याह रावणम्।
तव हस्तवधाद्वीर रामेण मरणं वरम्॥ ६८

अहं गमिष्यामि तत्र यत्र त्वं नेतुमिच्छसि।
अथ पुष्पकमारुह्य जनस्थानमुपागतः॥ ६९

मारीचस्तत्र सौवर्णं मृगमास्थाय चाग्रतः।
जगाम यत्र सा सीता वर्तते जनकात्मजा॥ ७०

सौवर्णं मृगपोतं तु दृष्ट्वा सीता यशस्विनी।
भाविकर्मवशाद्रामामुवाच पतिमात्मनः॥ ७१

गृहीत्वा देहि सौवर्णं मृगपोतं नृपात्मज।
अयोध्यायां तु मद्गेहे क्रीडनार्थमिदं मम॥ ७२

तथैवमुक्तो रामस्तु लक्ष्मणं स्थाप्य तत्र वै।
रक्षणार्थं तु सीताया गतोऽसौ मृगपृष्ठतः॥ ७३

रामेण चानुयातोऽसौ अभ्यधावद्वने मृगः।
ततः शरेण विव्याध रामस्तं मृगपोतकम्॥ ७४

हा लक्ष्मणेति चोक्त्वासौ निपपात महीतले।
मारीचः पर्वताकारस्तेन नष्टो बभूव सः॥ ७५

आकर्ण्य रुदतः शब्दं सीता लक्ष्मणमब्रवीत्।
गच्छ लक्ष्मण पुत्र त्वं यत्रायं शब्द उत्थितः॥ ७६

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तत्त्वं वै रुदतः श्रूयते ध्वनिः।
प्रायो रामस्य संदेहं लक्षयेऽहं महात्मनः॥ ७७

इत्युक्तः स तथा प्राह लक्ष्मणस्तामनिन्दिताम्।
न हि रामस्य संदेहो न भयं विद्यते क्वचित्॥ ७८

रावणके यों समझानेपर मारीचने कहा—'अरे पापिष्ठ! तुम्हीं जाओ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं तो विश्वामित्रमुनिके यज्ञमें पहले ही श्रीरामके हाथों भारी कष्ट उठा चुका हूँ।' मारीचके यों कहनेपर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उसे मार डालनेको उद्यत हो गया। तब मारीचने उससे कहा—'वीर! तुम्हारे हाथसे वध हो, इसकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथसे ही मरना अच्छा है। तुम मुझे जहाँ ले चलना चाहते हो, वहाँ अब मैं अवश्य चलूँगा'॥ ६६—६८½॥

यह सुनकर वह पुष्पकविमानपर आरूढ हो उसके साथ जनस्थानके निकट आया। वहाँ पहुँचकर मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारणकर, जहाँ जनकनन्दिनी सीता विद्यमान थीं, वहाँ उनके सामने गया। उस सुवर्णमय मृगकिशोरको देखकर यशस्विनी सीता भावी कर्मके वशीभूत हो अपने पति भगवान् श्रीरामसे बोलीं—'राजपुत्र! आप उस सुवर्णमय मृगशावकको पकड़कर मेरे लिये ला दीजिये। यह अयोध्यामें मेरे महलके भीतर क्रीड़ा-विनोदके लिये रहेगा'॥ ६९—७२॥

सीताके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहाँ रख दिया और स्वयं उस मृगके पीछे चले। श्रीरामके पीछा करनेपर वह मृग वनकी ओर भागा, तब श्रीरामने उस मृगशावकको बाणसे बींध डाला। मारीच 'हा! लक्ष्मण!'—यों कहकर पर्वताकार शरीरसे पृथ्वीपर गिरा और प्राणहीन हो गया। रोते हुए मारीचके उस आर्तनादको सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'वत्स लक्ष्मण! जहाँसे यह आवाज आयी है, वहीं तुम भी जाओ। निश्चय ही तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताके रोदनका शब्द कानोंमें आ रहा है, मुझे प्रायः महात्मा श्रीरामका जीवन संशयमें पड़ा दिखायी देता है'॥ ७३—७७॥

सीताकी यह बात सुनकर उन अनिन्दिता देवीसे लक्ष्मणने कहा—'देवि! श्रीरामके लिये कोई संदेहकी बात नहीं है, उन्हें कहीं भी भय नहीं है।'

इति ब्रुवाणं तं सीता भाविकर्मबलाद्धृतम्।
लक्ष्मणं प्राह वैदेही विरुद्धवचनं तदा॥ ७९

मृते रामे तु मामिच्छन्नतस्त्वं न गमिष्यसि।
इत्युक्तः स विनीतात्मा असहन्नप्रियं वचः॥ ८०

जगाम राममन्वेष्टुं तदा पार्थिवनन्दनः।
संन्यासवेषमास्थाय रावणोऽपि दुरात्मवान्॥ ८१

स सीतापार्श्वमासाद्य वचनं चेदमुक्तवान्।
आगतो भरतः श्रीमानयोध्याया महामतिः॥ ८२

रामेण सह सम्भाष्य स्थितवांस्तत्र कानने।
मां च प्रेषितवान् रामो विमानमिदमारुह॥ ८३

अयोध्यां याति रामस्तु भरतेन प्रसादितः।
मृगबालं तु वैदेहि क्रीडार्थं ते गृहीतवान्॥ ८४

क्लेशितासि महारण्ये बहुकालं त्वमीदृशम्।
सम्प्राप्तराज्यस्ते भर्ता रामः स रुचिराननः॥ ८५

लक्ष्मणश्च विनीतात्मा विमानमिदमारुह।
इत्युक्ता सा तथा गत्वा नीता तेन महात्मना॥ ८६

आरुरोह विमानं तु छद्मना प्रेरिता सती।
तज्जगाम ततः शीघ्रं विमानं दक्षिणां दिशम्॥ ८७

ततः सीता सुदुःखार्ता विललाप सुदुःखिता।
विमाने खेऽपि रोदन्त्याश्चक्रे स्पर्शं न राक्षसः॥ ८८

रावणः स्वेन रूपेण बभूवाथ महातनुः।
दशग्रीवं महाकायं दृष्ट्वा सीता सुदुःखिता॥ ८९

हा राम वञ्चिताद्याहं केनापिच्छद्मरूपिणा।
रक्षसा घोररूपेण त्रायस्वेति भयार्दिता॥ ९०

हे लक्ष्मण महाबाहो मां हि दुष्टेन रक्षसा।
द्रुतमागत्य रक्षस्व नीयमानामथाकुलाम्॥ ९१

यों कहते हुए लक्ष्मणसे उस समय विदेहकुमारी सीताने कुछ विरुद्ध वचन कहा, जो भवितव्यताकी प्रेरणासे उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा था। वे बोलीं—'मैं जानती हूँ, तुम श्रीरामके मर जानेपर मुझे अपनी बनाना चाहते हो; इसीसे इस समय वहाँ नहीं जा रहे हो।' सीताके यों कहनेपर विनयशील राजकुमार लक्ष्मण उस अप्रिय वचनको न सह सके और तत्काल ही श्रीरामचन्द्रजीकी खोजमें चल पड़े॥ ७८—८०½॥

इसी समय दुरात्मा रावण भी संन्यासीका वेष बनाकर सीताके पास आया और यों बोला—'देवि! अयोध्यासे महाबुद्धिमान् भरतजी आये हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ बातचीत करके वहीं काननमें ठहरे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजीने मुझे तुम्हें बुलानेके लिये यहाँ भेजा है। तुम इस विमानपर चढ़ चलो। भरतजीने मनाकर श्रीरामको अयोध्या चलनेके लिये राजी कर लिया है, अतः वे अयोध्या जा रहे हैं। वैदेहि! तुम्हारी क्रीडा—विनोदके लिये उन्होंने उस मृग-शावकको भी पकड़ लिया है। अहो! तुमने इस विशाल वनमें बहुत दिनोंतक ऐसा महान् कष्ट उठाया है। अब तुम्हारे स्वामी सुन्दर मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी तथा उनके विनयशील भाई लक्ष्मण भी राज्यग्रहण कर चुके हैं। अतः तुम उनके पास चलनेके लिये इस विमानपर चढ़ जाओ'॥ ८१—८५½॥

उसके यों कहनेपर उसकी कपटपूर्ण बातोंसे प्रेरित हो सती सीता वह सब सत्य मानकर उस तथाकथित महात्माके साथ विमानके निकट गयीं और उसपर आरूढ हो गयीं। तब वह विमान शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा। यह देख सीता अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो, अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगीं। यद्यपि सीता आकाशमें उसके अपने ही विमानपर बैठी थीं, तथापि रावणने वहाँ रोती हुई सीताका स्पर्श नहीं किया। अब रावण अपने असली रूपमें आ गया। उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया। दस मस्तकवाले उस विशालकाय राक्षसपर दृष्टि पड़ते ही सीता अत्यन्त दुःखमें डूब गयीं और विलाप करने लगीं—'हाय राम! किसी कपटवेषधारी भयानक राक्षसने आज मुझे धोखा दिया है, मैं भयसे पीड़ित हो रही हूँ; मुझे बचाओ। हे महाबाहु लक्ष्मण! मुझे दुष्ट राक्षस हरकर लिये जा रहा है। मैं भयसे व्याकुल हूँ, तुम जल्दी आकर मुझ असहायाकी रक्षा करो'॥ ८६—९१॥

एवं प्रलपमानायाः सीतायास्तन्महत्स्वनम्।
आकर्ण्य गृध्रराजस्तु जटायुस्तत्र चागतः॥ ९२

तिष्ठ रावण दुष्टात्मन् मुञ्च मुञ्चात्र मैथिलीम्।
इत्युक्त्वा युयुधे तेन जटायुस्तत्र वीर्यवान्॥ ९३

पक्षाभ्यां ताडयामास जटायुस्तस्य वक्षसि।
ताडयन्तं तु तं मत्वा बलवानिति रावणः॥ ९४

तुण्डचञ्चुप्रहारैस्तु भृशं तेन प्रपीडितः।
तत उत्थाप्य वेगेन चन्द्रहासमसिं महत्॥ ९५

जघान तेन दुष्टात्मा जटायुं धर्मचारिणम्।
निपपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः॥ ९६

उवाच च दशग्रीवं दुष्टात्मन् न त्वया हतः।
चन्द्रहासस्य वीर्येण हतोऽहं राक्षसाधम॥ ९७

निरायुधं को हनेन्मूढ सायुधस्त्वामृते जनः।
सीतापहरणं विद्धि मृत्युस्ते दुष्ट राक्षस॥ ९८

दुष्ट रावण रामस्त्वां वधिष्यति न संशयः।
रुदती दुःखशोकार्ता जटायुं प्राह मैथिली॥ ९९

मत्कृते मरणं यस्मात्त्वया प्राप्तं द्विजोत्तम।
तस्माद्रामप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्स्यसि॥ १००

यावद्रामेण सङ्गस्ते भविष्यति महाद्विज।
तावत्तिष्ठन्तु ते प्राणा इत्युक्त्वा तु खगोत्तमम्॥ १०१

ततस्तान्यर्पितान्यङ्गाद्भूषणानि विमुच्य सा।
शीघ्रं निबध्य वस्त्रेण रामहस्तं गमिष्यथ॥ १०२

इत्युक्त्वा पातयामास भूमौ सीता सुदुःखिता।
एवं हत्वा स सीतां तु जटायुं पात्य भूतले॥ १०३

इस प्रकार उच्चस्वरसे विलाप करती हुई सीताके उस महान् आर्तनादको सुनकर गृध्रराज जटायु वहाँ आ पहुँचे (और बोले—) 'अरे दुष्टात्मा रावण! ठहर जा; तू सीताको छोड़ दे, छोड़ दे।' यह कहकर पराक्रमी जटायु उसके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने अपने दोनों पंखोंसे रावणकी छातीमें चोट की। उनको इस प्रकार प्रहार करते देख रावणने समझ लिया कि 'यह पक्षी बड़ा बलवान् है।' जब जटायुके मुख और चोंचकी मारसे वह बहुत पीड़ित हो गया, तब उस दुष्टने बड़े वेगसे 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग उठाया और उससे धर्मात्मा जटायुपर घातक प्रहार किया। इससे उनकी चेतना क्षीण हो गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ९२—९६॥

उस समय उन्होंने रावणसे कहा—'अरे दुष्टात्मन्! ओ नीच राक्षस! मुझे तूने नहीं मारा है। मैं तो तेरे 'चन्द्रहास' नामक खड्गके प्रभावसे मारा गया हूँ। अरे मूर्ख! तेरे सिवा दूसरा कौन शस्त्रधारी योद्धा होगा, जो किसी निहत्थेपर हथियार चलायेगा? अरे दुष्ट राक्षस! तू यह जान ले कि सीताका हर ले जाना तेरी मौत है। दुष्टात्मा रावण! निस्संदेह श्रीरामचन्द्रजी तेरा वध कर डालेंगे'॥ ९७-९८½॥

जटायुके मारे जानेसे अत्यन्त दुःख और शोकसे पीड़ित हुई मिथिलेशकुमारी सीता उनसे रोकर बोलीं—'हे पक्षिराज! तुमने मेरे लिये मृत्युका वरण किया है, इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे विष्णुलोकको प्राप्त होओगे। खगश्रेष्ठ! जबतक श्रीरामचन्द्रजीसे तुम्हारी भेंट न हो, तबतक तुम्हारे प्राण शरीरमें ही रहें।' उन पक्षिराजसे यों कहकर अत्यन्त दुःखिनी सीताने अपने शरीरसे धारण किये हुए समस्त आभूषणोंको उतारा और शीघ्रतापूर्वक वस्त्रमें बाँधकर कहा—'तुम सब-के-सब श्रीरामके हाथमें पहुँच जाओगे।' और तब उन्हें भूमिपर गिरा दिया॥ ९९—१०२½॥

इस प्रकार सीताको हरकर तथा जटायुको धराशायी

पुष्पकेण गतः शीघ्रं लङ्कां दुष्टनिशाचरः।
अशोकवनिकामध्ये स्थापयित्वा स मैथिलीम्॥ १०४

इमामत्रैव रक्षध्वं राक्षस्यो विकृताननाः।
इत्यादिश्य गृहं यातो रावणो राक्षसेश्वरः॥ १०५

लङ्कानिवासिनश्चोचुरेकान्तं च परस्परम्।
अस्याः पुर्या विनाशार्थं स्थापितेयं दुरात्मना॥ १०६

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्ष्यमाणा समन्ततः।
सीता च दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा॥ १०७

उवास सा सुदुःखार्ता दुःखिता रुदती भृशम्।
यथा ज्ञानखले देवी हंसयाना सरस्वती॥ १०८

सुग्रीवभृत्या हरयश्चतुरश्च यदृच्छया।
वस्त्रबद्धं तयोत्सृष्टं गृहीत्वा भूषणं द्रुतम्॥ १०९

स्वभर्त्रे विनिवेद्योचुः सुग्रीवाय महात्मने।
अरण्येऽभून्महायुद्धं जटायो रावणस्य च॥ ११०

अथ रामश्च तं हत्वा मारीचं मायया ऽऽगतम्।
निवृत्तो लक्ष्मणं दृष्ट्वा तेन गत्वा स्वमाश्रमम्॥ १११

सीतामपश्यन्दुःखार्तः प्ररुरोद स राघवः।
लक्ष्मणश्च महातेजा रुरोद भृशदुःखितः॥ ११२

बहुप्रकारमस्वस्थं रुदन्तं राघवं तदा।
भूतले पतितं धीमानुत्थाप्याश्वास्य लक्ष्मणः॥ ११३

उवाच वचनं प्राप्तं तदा यत्तच्छृणुष्व मे।
अतिवेलं महाराज न शोकं कर्तुमर्हसि॥ ११४

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वं सीतां मृगयितुं प्रभो।
इत्येवं वदता तेन लक्ष्मणेन महात्मना॥ ११५

उत्थापितो नरपतिर्दुःखितो दुःखितेन तु।
भ्रात्रा सह जगामाथ सीतां मृगयितुं वनम्॥ ११६

करके वह दुष्ट निशाचर पुष्पकविमानद्वारा शीघ्र ही लङ्कामें जा पहुँचा। वहाँ मिथिलेशकुमारी सीताको अशोक-वाटिकामें रखकर राक्षसियोंसे बोला—'भयंकर मुखवाली निशाचरियो! तुम लोग यहीं सीताकी रखवाली करो।' यह आदेश दे वह राक्षसराज रावण अपने भवनमें चला गया। उस समय लङ्कानिवासी एकान्तमें परस्पर मिलकर बातें करने लगे—'दुरात्मा रावणने इस नगरीका विनाश करनेके लिये ही सीताको यहाँ ला रखा है'॥ १०३—१०६॥

विकट आकारवाली राक्षसियोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित हुई सीता वहाँ दुःखमग्न हो केवल श्रीरामचन्द्रजीका ही चिन्तन करती हुई रहने लगीं। वे सदा अत्यन्त शोकार्त्त हो बड़े दुःखके साथ बहुत रोदन किया करती थीं। रावणके वशमें पड़ी हुई सीता ज्ञानको अपनेतक ही सीमित रखनेवाले कृपणके अधीन हुई हंसवाहिनी सरस्वतीके समान वहाँ शोभा नहीं पाती थी॥ १०७-१०८॥

सीताने वस्त्रमें बँधे हुए अपने जिन आभूषणोंको नीचे गिरा दिया था, उन्हें अकस्मात् घूमनेके लिये आये हुए चार वानरोंने, जो वानरराज सुग्रीवके सेवक थे, पाया और शीघ्रतापूर्वक ले जाकर अपने स्वामी महात्मा सुग्रीवको अर्पित करके यह समाचार भी सुनाया कि 'आज वनके भीतर जटायु और रावणमें बड़ा भारी युद्ध हुआ था।' इधर, जब श्रीरामचन्द्रजी मायामय वेष बनाकर आये हुए उस मारीचको मारकर लौट पड़े, तब मार्गमें लक्ष्मणको देखकर उनके साथ अपने आश्रमपर आये; किंतु वहाँ सीताको न देखकर वे दुःखसे व्यथित हो फूट-फूटकर रोने लगे। महातेजस्वी लक्ष्मण भी अत्यन्त दुःखी होकर रोदन करने लगे। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको सर्वथा अस्वस्थ होकर रोते और पृथ्वीपर गिरा देख बुद्धिमान् लक्ष्मणने उन्हें उठाकर धीरज बँधाया॥ १०९—११३॥

राजन्! उस समय लक्ष्मणने उनसे जो समयोचित बात कही थी, वह तुम मुझसे सुनो। (लक्ष्मण बोले—) 'महाराज! आप अधिक शोक न करें। प्रभो! अब सीताकी खोज करनेके लिये आप शीघ्रतापूर्वक उठिये, उठिये।' इत्यादि बातें कहते हुए दुःखी महात्मा लक्ष्मणने अपने शोक-ग्रस्त भाई राजा रामचन्द्रजीको उठाया और उनके साथ स्वयं सीताकी खोज करनेके लिये वनमें चले॥ ११४—११६॥

वनानि सर्वाणि विशोध्य राघवो
गिरीन् समस्तान् गिरिसानुगोचरान्।
तथा मुनीनामपि चाश्रमान् बहूं-
स्तृणादिवल्लीगहनेषु भूमिषु॥ ११७

नदीतटे भूविवरे गुहायां
निरीक्षमाणोऽपि महानुभावः।
प्रियामपश्यन् भृशदुःखितस्तदा
जटायुषं वीक्ष्य च घातितं नृपः॥ ११८

अहो भवान् केन हतस्त्वमीदृशीं
दशामवाप्तोऽसि मृतोऽसि जीवसि।
ममाद्य सर्वं समदुःखितस्य भोः
पत्नीवियोगादिह चागतस्य वै॥ ११९

इत्युक्तमात्रे विहगोऽथ कृच्छ्रा-
दुवाच वाचं मधुरां तदानीम्।
शृणुष्व राजन् मम वृत्तमत्र
वदामि दृष्टं च कृतं च सद्यः॥ १२०

दशाननस्तामपनीय मायया
सीतां समारोप्य विमानमुत्तमम्।
जगाम खे दक्षिणदिङ्मुखोऽसौ
सीता च माता विललाप दुःखिता॥ १२१

आकर्ण्य सीतास्वनमागतोऽहं
सीतां विमोक्तुं स्वबलेन राघव।
युद्धं च तेनाहमतीव कृत्वा
हतः पुनः खड्गबलेन रक्षसा॥ १२२

वैदेहिवाक्यादिह जीवता मया
दृष्टो भवान् स्वर्गमितो गमिष्ये।
मा राम शोकं कुरु भूमिपाल
जह्यद्य दुष्टं सगणं तु नैर्ऋतम्॥ १२३

रामो जटायुषेत्युक्तः पुनस्तं चाह शोकतः।
स्वस्त्यस्तु ते द्विजवर गतिस्तु परमास्तु ते॥ १२४

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सारे वनोंको छान डाला, समस्त पर्वतों तथा उनकी चोटियोंपर जानेवाले मार्गोंका भी निरीक्षण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने मुनियोंके बहुत-से आश्रम भी देखे; तृण एवं लताओंसे आच्छादित वनस्थलियों तथा खुले मैदानोंमें, नदीके किनारे, गड्ढोंमें और कन्दराओंमें देखनेपर भी जब उन महानुभावको अपनी प्रिया सीताका पता नहीं लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। उसी समय राजा रामचन्द्रजीने रावणद्वारा मारे गये जटायुको देखा और कहा—'अहो! आपको किसने मारा? आह! आप ऐसी दुर्दशाको पहुँच चुके हैं? पता नहीं, जीवित हैं या मर गये। पत्नीके वियोगवश आपके समान ही दुःखी होकर यहाँ आये हुए मुझ रामके लिये आजकल आप ही सब कुछ थे'॥ ११७—११९॥

भगवान् रामके इतना कहते ही वह पक्षी उस समय बड़े कष्टसे मधुर वाणीमें बोला—'राजन्! इस समय मैंने जो कुछ देखा है और तत्काल ही उसके लिये जो कुछ किया है, वह मेरा सारा वृत्तान्त आप सुनें। दशमुख रावणने मायासे सीताका अपहरण करके उसे उत्तम विमानपर चढ़ा लिया और आकाशमार्गसे वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया। उस समय माता सीता बड़े दुःखके साथ विलाप कर रही थीं। रघुनन्दन! सीताकी आवाज सुनकर मैंने उन्हें अपने ही बलसे छुड़ानेके लिये रावणके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। फिर उस राक्षसने अपनी तलवारके बलसे मुझे मार डाला। विदेहकुमारी सीताके ही आशीर्वादसे मैं अभीतक जीवित था, अब यहाँसे स्वर्गलोकको जाऊँगा। पृथ्वीपालक राम! आप शोक न कीजिये, अब तो उस दुष्ट राक्षसको उसके गणोंसहित मार ही डालिये'॥ १२०—१२३॥

जटायुके यों कहनेपर श्रीरामने पुनः शोकपूर्वक उनसे कहा—'पक्षिराज! आपका कल्याण हो और आपको उत्तम गति मिले।'

ततो जटायुः स्वं देहं विहाय गतवान्दिवम्।
विमानेन तु रम्येण सेव्यमानोऽप्सरोगणैः॥ १२५

रामोऽपि दग्ध्वा तद्देहं स्नातो दत्त्वा जलाञ्जलिम्।
भ्रात्रा सगच्छन् दुःखार्तो राक्षसीं पथि दृष्टवान्॥ १२६

उद्वमन्तीं महोल्काभां विवृतास्यां भयंकरीम्।
क्षयं नयन्तीं जन्तून् वै पातयित्वा गतो रुषा॥ १२७

गच्छन् वनान्तरं रामः स कबन्धं ददर्श ह।
विरूपं जठरमुखं दीर्घबाहुं घनस्तनम्॥ १२८

रुन्धानं राममार्गं तु दृष्ट्वा तं दग्धवाञ्शनैः।
दग्धोऽसौ दिव्यरूपी तु खस्थो राममभाषत॥ १२९

राम राम महाबाहो त्वया मम महामते।
विरूपं नाशितं वीर मुनिशापाच्चिरागतम्॥ १३०

त्रिदिवं यामि धन्योऽस्मि त्वत्प्रसादान्न संशयः।
त्वं सीताप्राप्तये सख्यं कुरु सूर्यसुतेन भोः॥ १३१

वानरेन्द्रेण गत्वा तु सुग्रीवे स्वं निवेद्य वै।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ ऋष्यमूकगिरिं व्रज॥ १३२

इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् रामो लक्ष्मणसंयुतः।
सिद्धैस्तु मुनिभिः शून्यमाश्रमं प्रविवेश ह॥ १३३

तत्रस्थां तापसीं दृष्ट्वा तया संलाप्य संस्थितः।
शबरीं मुनिमुख्यानां सपर्याहतकल्मषाम्॥ १३४

तया सम्पूजितो रामो बदरादिभिरीश्वरः।
साप्येनं पूजयित्वा तु स्वामवस्थां निवेद्य वै॥ १३५

सीतां त्वं प्राप्स्यसीत्युक्त्वा प्रविश्याग्निं दिवंगता।
दिवं प्रस्थाप्य तां चापि जगामान्यत्र राघवः॥ १३६

तदनन्तर जटायु अपना शरीर त्यागकर एक सुन्दर विमानपर आरूढ़ हुए और अप्सरागणोंसे सेवित हो स्वर्गलोकको चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने भी उनके शरीरका दाह-संस्कार करके स्नानके पश्चात् उनके निमित्त जलाञ्जलि दी। फिर सीताके लिये दुःखी हो भाई लक्ष्मणके साथ आगे जाने लगे। इतनेमें ही उन्हें रास्तेपर एक राक्षसी खड़ी दिखायी दी। वह मुँहसे बड़ी भारी उल्काके समान आगकी ज्वाला उगल रही थी। उसका मुँह फैला हुआ था। वह बड़ी डरावनी थी और पास आये हुए अनेकानेक जीवोंका संहार कर रही थी। श्रीरामने उसे रोषपूर्वक मार गिराया। फिर वे आगे बढ़ गये। जब श्रीराम दूसरे वनमें जाने लगे, तब उन्होंने कबन्धको देखा, जो बहुत ही कुरूप था। उसका मुख उसके पेटमें ही था, बाँहें बड़ी-बड़ी थीं और स्तन घने थे। श्रीरामने उसे अपना मार्ग रोकते देख उसे काठ-कबाड़द्वारा धीरे-धीरे जला दिया। जल जानेपर वह दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुआ और आकाशमें स्थित होकर श्रीरामसे बोला— ॥ १२४—१२९॥

'महाबाहु श्रीराम! महामते वीरवर! एक मुनिके शापवश चिरकालसे प्राप्त हुई मेरी कुरूपताको आपने नष्ट कर दिया; अब मैं स्वर्गलोकको जा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि आज मैं आपकी कृपासे धन्य हो गया। रघुनन्दन! आप सीताकी प्राप्तिके लिये सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता कीजिये। उनके यहाँ जाकर सुग्रीवसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर देनेपर आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः नृपश्रेष्ठ! आप यहाँसे ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये'॥ १३०—१३२॥

यह कहकर कबन्ध स्वर्गको चला गया। कहते हैं, तब लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीने एक ऐसे आश्रममें प्रवेश किया, जो सिद्धों और मुनियोंसे शून्य था। उसमें उन्होंने एक 'शबरी' नामकी तपस्विनी देखी, जो बड़े-बड़े मुनियोंकी सेवा-पूजा करनेसे निष्पाप हो गयी थी। उसके साथ वार्तालाप करके वे वहाँ ठहर गये। शबरीने बेर आदि फलोंके द्वारा भगवान् रामका भलीभाँति सत्कार किया। आवभगतके पश्चात् उनसे अपनी अवस्था निवेदन की और यह कहकर कि 'आप सीताको प्राप्त कर लेंगे' वह शबरी भी उनके सामने ही अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गयी। उसे भी स्वर्गलोकमें पहुँचाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अन्यत्र चले गये॥ १३३—१३६॥

ततो विनीतेन गुणान्वितेन
भ्रात्रा समेतो जगदेकनाथः।
प्रियावियोगेन सुदुःखितात्मा
जगाम याम्यां स तु रामदेवः॥ १३७

तदनन्तर विनयशील और गुणी भाई लक्ष्मणके साथ जगदीश्वर भगवान् राम प्रियाके वियोगसे अत्यन्त दुःखी हो वहाँसे दक्षिणकी ओर चल दिये॥ १३७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः॥ ४९॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारविषयक' उन्चासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

सुग्रीवसे मैत्री; वालिवध; सुग्रीवका प्रमाद और उसकी भर्त्सना; सीताकी खोज और हनुमान्‌का लङ्कागमन

मार्कण्डेय उवाच

वालिना कृतवैरोऽथ दुर्गवर्ती हरीश्वरः।
सुग्रीवो दृष्टवान् दूराद्दृष्ट्वाऽऽह पवनात्मजम्॥ १

कस्येमौ सुधनुःपाणी चीरवल्कलधारिणौ।
पश्यन्तौ सरसीं दिव्यां पद्मोत्पलसमावृताम्॥ २

नानारूपधरावेतौ तापसं वेषमास्थितौ।
वालिदूताविह प्राप्ताविति निश्चित्य सूर्यजः॥ ३

उत्पपात भयत्रस्तः ऋष्यमूकाद् वनान्तरम्।
वानरैः सहितः सर्वैरगस्त्याश्रममुत्तमम्॥ ४

मार्कण्डेयजी बोले—वालीसे वैर हो जानेके कारण उसके लिये दुर्गम स्थानमें रहनेवाले वानरराज सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम और लक्ष्मणको आते देखा और देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीसे कहा—'ये दोनों किसके पुत्र हैं, जो हाथमें सुन्दर धनुष लिये, चीर एवं वल्कल-वस्त्र धारण किये, कमलों एवं उत्पलोंसे आच्छन्न इस दिव्य सरोवरको देख रहे हैं।' जान पड़ता है, ये दोनों वालीके भेजे हुए बहुविधरूपधारी दूत हैं, जो इस समय तपस्वीका वेष धारण किये यहाँ आ पहुँचे हैं। यह निश्चय करके सूर्यकुमार सुग्रीव भयभीत हो गये और समस्त वानरोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतसे कूदकर दूसरे वनमें स्थित अगस्त्यमुनिके उत्तम आश्रमपर चले गये॥ १—४॥

तत्र स्थित्वा स सुग्रीवः प्राह वायुसुतं पुनः।
हनूमन् पृच्छ शीघ्रं त्वं गच्छ तापसवेषधृक्॥ ५

कौ हि कस्य सुतौ जातौ किमर्थं तत्र संस्थितौ।
ज्ञात्वा सत्यं मम ब्रूहि वायुपुत्र महामते॥ ६

इत्युक्तो हनुमान् गत्वा पम्पातटमनुत्तमम्।
भिक्षुरूपी स तं प्राह रामं भ्रात्रा समन्वितम्॥ ७

को भवानिह सम्प्राप्तस्तथ्यं ब्रूहि महामते।
अरण्ये निर्जने घोरे कुतस्त्वं किं प्रयोजनम्॥ ८

वहाँ स्थित होकर सुग्रीवने पुनः पवनकुमारसे कहा—'हनूमन्! तुम भी तपस्वीका वेष धारण करके शीघ्र जाओ और पूछो कि 'वे कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और किस लिये वहाँ ठहरे हुए हैं?' महाबुद्धिमान् वायुनन्दन! ये सब बातें सच-सच जानकर मुझसे बताओ'॥ ५-६॥

उनके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जी संन्यासीके रूपमें पम्पासरके उत्तम तटपर गये और भाई लक्ष्मणके साथ विद्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'महामते! आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं? इस जनशून्य घोर वनमें आप कहाँसे आ गये? यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?—ये सब बातें मेरे समक्ष ठीक-ठीक बताइये'॥ ७-८॥

एवं वदन्तं तं प्राह लक्ष्मणो भ्रातुराज्ञया।
प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं रामवृत्तान्तमादितः॥ ९

राजा दशरथो नाम बभूव भुवि विश्रुतः।
तस्य पुत्रो महाबुद्धे रामो ज्येष्ठो ममाग्रजः॥ १०

अस्याभिषेक आरब्धः कैकेय्या तु निवारितः।
पितुराज्ञामयं कुर्वन् रामो भ्राता ममाग्रजः॥ ११

मया सह विनिष्क्रम्य सीतया सह भार्यया।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं नानामुनिसमाकुलम्॥ १२

जनस्थाने निवसतो रामस्यास्य महात्मनः।
भार्या सीता तत्र वने केनापि पाप्मना हृता॥ १३

सीतामन्वेषयन् वीरो रामः कमललोचनः।
इहायातस्त्वया दृष्ट इति वृत्तान्तमीरितम्॥ १४

श्रुत्वा ततो वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः।
अव्यञ्जितात्मा विश्वासाद्धनूमान् मारुतात्मजः॥ १५

त्वं मे स्वामी इति वदन् रामं रघुपतिं तदा।
आश्वास्यानीय सुग्रीवं तयोः सख्यमकारयत्॥ १६

शिरस्यारोप्य पादाब्जं रामस्य विदितात्मनः।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्तु उवाच मधुराक्षरम्॥ १७

अद्यप्रभृति राजेन्द्र त्वं मे स्वामी न संशयः।
अहं तु तव भृत्यश्च वानरैः सहितः प्रभो॥ १८

त्वच्छत्रुर्मम शत्रुः स्यादद्यप्रभृति राघव।
मित्रं ते मम सन्मित्रं त्वद्दुःखं तन्ममापि च॥ १९

त्वत्प्रीतिरेव मत्प्रीतिरित्युक्त्वा पुनराह तम्।
वाली नाम मम ज्येष्ठो महाबलपराक्रमः॥ २०

भार्यापहारी दुष्टात्मा मदनासक्तमानसः।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र नास्ति हन्ताद्य वालिनम्॥ २१

युगपत्सप्ततालांस्तु तरून् यो वै वधिष्यति।
स तं वधिष्यतीत्युक्तं पुराणज्ञैर्नृपात्मज॥ २२

इस प्रकार पूछते हुए हनुमान्‌जीसे अपने भाईकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण बोले—'मैं श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त आदिसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। इस पृथ्वीपर दशरथ नामके राजा बहुत प्रसिद्ध थे। महाबुद्धे! ये मेरे बड़े भाई श्रीराम उन्हीं महाराजके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका राज्याभिषेक होने जा रहा था, किंतु (मेरी छोटी सौतेली माता) कैकेयीने उसे रोक दिया। फिर, पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए ये मेरे बड़े भ्राता श्रीराम मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी सीताके साथ घरसे निकल आये। वनमें आकर इन्होंने अनेकों मुनियोंसे युक्त दण्डकारण्यमें प्रवेश किया। वहाँ जनस्थानमें निवास करते हुए इन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीताको वनमें किसी पापीने हर लिया। उन सीताजीकी ही खोज करते हुए ये वीरवर कमलनयन श्रीराम यहाँ आये हैं, जिससे तुम्हें यहाँ इनका दर्शन हुआ है। बस, यही हमारा वृत्तान्त है, जो तुमसे बता दिया'॥ ९—१४॥

महात्मा लक्ष्मणके वचन सुनकर उनपर विश्वास हो आनेके कारण वायुनन्दन हनूमान्‌ने अपने स्वरूपको प्रकट नहीं किया और रघुकुलनायक रामचन्द्रसे यह कहकर कि 'आप मेरे स्वामी हैं'—उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने साथ सुग्रीवके पास ले आकर उन दोनों भाइयोंकी सुग्रीवसे मित्रता करा दी। फिर श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका परिचय प्राप्त हो जानेके कारण उनके चरण-कमलोंको सिरपर धारणकर वानरराज सुग्रीवने मधुर वाणीमें कहा—'राजेन्द्र! इसमें संदेह नहीं कि आजसे आप हमारे स्वामी हुए और प्रभो! मैं समस्त वानरोंके साथ आपका सेवक हुआ। रघुनन्दन! आपका जो शत्रु है, वह आजसे मेरा भी शत्रु है और जो आपका मित्र है, वह मेरा भी श्रेष्ठ मित्र है; इतना ही नहीं, आपका जो दुःख है, वह मेरा भी है तथा आपकी प्रसन्नता ही मेरी भी प्रसन्नता है' यों कहकर सुग्रीवने पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— ॥ १५—१९½॥

'प्रभो! 'वाली' नामक मेरा ज्येष्ठ भाई है, जो महाबलवान् और बड़ा ही पराक्रमी है; किंतु वह हृदयका अत्यन्त दुष्ट है। उसने कामासक्त होकर मेरी भार्याका अपहरण कर लिया है। पुरुषश्रेष्ठ! इस समय आपके सिवा दूसरा कोई वालीको मारनेवाला नहीं है। राजकुमार! पुराणवेत्ताओंने कहा है कि जो ताड़के इन सात वृक्षोंको एक साथ ही काट डालेगा, वही वालीका वध कर सकेगा'॥ २०—२२॥

तत्प्रियार्थं हि रामोऽपि श्रीमांश्छित्त्वा महातरून्।
अर्धाकृष्टेन बाणेन युगपद्रघुनन्दनः॥ २३

विद्ध्वा महातरून् रामः सुग्रीवं प्राह पार्थिवम्।
वालिना गच्छ युध्यस्व कृतचिह्नो रवेः सुत॥ २४

इत्युक्तः कृतचिह्नोऽयं युद्धं चक्रेऽथ वालिना।
रामोऽपि तत्र गत्वाथ शरेणैकेन वालिनम्॥ २५

विव्याध वीर्यवान् वाली पपात च ममार च।
वित्रस्तं वालिपुत्रं तु अङ्गदं विनयान्वितम्॥ २६

रणशौण्डं यौवराज्ये नियुक्त्वा राघवस्तदा।
तां च तारां तथा दत्त्वा रामश्च रविसूनवे॥ २७

सुग्रीवं प्राह धर्मात्मा रामः कमललोचनः।
राज्यमन्वेषय स्वं त्वं कपीनां पुनराव्रज॥ २८

त्वं सीतान्वेषणे यत्नं कुरु शीघ्रं हरीश्वर।
इत्युक्तः प्राह सुग्रीवो रामं लक्ष्मणसंयुतम्॥ २९

प्रावृट्कालो महान् प्राप्तः साम्प्रतं रघुनन्दन।
वानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे॥ ३०

गते तस्मिंस्तु राजेन्द्र प्राप्ते शरदि निर्मले।
चारान् सम्प्रेषयिष्यामि वानरान्दिक्षु राघव॥ ३१

इत्युक्त्वा रामचन्द्रं स तं प्रणम्य कपीश्वरः।
पम्पापुरं प्रविश्याथ रेमे तारासमन्वितः॥ ३२

रामोऽपि विधिवद्भ्रात्रा शैलसानौ महावने।
निवासं कृतवान् शैले नीलकण्ठे महामतिः॥ ३३

प्रावृट्काले गते कृच्छ्रात् प्राप्ते शरदि राघवः।
सीतावियोगाद्व्यथितः सौमित्रिं प्राह लक्ष्मणम्॥ ३४

उल्लङ्घितस्तु समयः सुग्रीवेण ततो रुषा।
लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातरं भ्रातृवत्सलः॥ ३५

[यह सुनकर] श्रीमान् रामचन्द्रजीने भी सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये आधे खींचे हुए बाणसे ही उन सात महावृक्षोंको एक ही साथ काट डाला। उन महावृक्षोंका भेदन करके श्रीरामने राजा सुग्रीवसे कहा—'सूर्यनन्दन सुग्रीव! मेरे पहचाननेके लिये अपने शरीरमें कोई चिह्न धारण करके तुम जाओ और वालीके साथ युद्ध करो।' उनके यों कहनेपर सुग्रीवने चिह्न धारणकर वालीके साथ युद्ध किया और श्रीरामने भी वहाँ जाकर एक ही बाणसे वालीको बीध दिया। इससे पराक्रमी वाली पृथ्वीपर गिरा और मर गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त डरे हुए वालि-कुमार अङ्गदको, जो बहुत ही विनयी और संग्राममें कुशल था, युवराजपदपर अभिषिक्त करके ताराको सुग्रीव-की सेवामें अर्पित कर दिया। तत्पश्चात् कमलनयन धर्मात्मा श्रीराम सुग्रीवसे बोले—'तुम वानरोंके राज्यकी देख-भाल कर लो, फिर मेरे पास आना और कपीश्वर! सीताकी खोज करानेका शीघ्र ही यत्न करना'॥ २३—२८½॥

उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! इस समय महान् वर्षाकाल आ पहुँचा है; इन्द्रके वर्षा करते रहनेपर इस वनमें वानरोंका चलना-फिरना न हो सकेगा। राजेन्द्र! वर्षा बीतने और शरत्काल आ जानेपर मैं समस्त दिशाओंमें अपने वानर दूतोंको भेजूँगा।' यह कहकर वानरराज सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और पम्पापुरमें प्रवेश करके वे ताराके साथ रमण करने लगे॥ २९—३२॥

इधर महामति श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाई लक्ष्मणके साथ उस महावनमें 'नीलकण्ठ' नामक पर्वतकी चोटीपर विधिपूर्वक रहने लगे। (सीताके वियोगमें) उनका वर्षाकाल बड़ी कठिनाईसे बीता। जब शरत्काल उपस्थित हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने सीताके वियोगसे व्यथित हो सुमित्रानन्दन लक्ष्मणसे इस विषयमें वार्तालाप किया। उस समयतक वहाँ न आकर सुग्रीवने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन किया था। इसलिये भ्रातृवत्सल ककुत्स्थनन्दन श्रीरामने लक्ष्मणसे क्रोधपूर्वक कहा—

गच्छ लक्ष्मण दुष्टोऽसौ नागतः कपिनायकः।
गते तु वर्षाकालेऽहमागमिष्यामि तेऽन्तिकम्॥ ३६

अनेकैर्वानरैः सार्धमित्युक्त्वासौ तदा गतः।
तत्र गच्छ त्वरायुक्तो यत्रास्ते कपिनायकः॥ ३७

तं दुष्टमग्रतः कृत्वा हरिसेनासमन्वितम्।
रमन्तं तारया सार्धं शीघ्रमानय मां प्रति॥ ३८

नात्रागच्छति सुग्रीवो यद्यसौ प्राप्तभूतिकः।
तदा त्वयैवं वक्तव्यः सुग्रीवोऽनृतभाषकः॥ ३९

वालिहन्ता शरो दुष्ट करे मेऽद्यापि तिष्ठति।
स्मृत्वैतदाचर कपे रामवाक्यं हितं तव॥ ४०

इत्युक्तस्तु तथेत्युक्त्वा रामं नत्वा च लक्ष्मणः।
पम्पापुरं जगामाथ सुग्रीवो यत्र तिष्ठति।
दृष्ट्वा स तत्र सुग्रीवं कपिराजं बभाष वै॥ ४१

ताराभोगविषक्तस्त्वं रामकार्यपराङ्मुखः।
किं त्वया विस्मृतं सर्वं रामाग्रे समयं कृतम्॥ ४२

सीतामन्विष्य दास्यामि यत्र क्वापीति दुर्मते।
हत्वा तु वालिनं राज्यं येन दत्तं पुरा तव॥ ४३

त्वामृते कोऽवमन्येत कपीन्द्र पापचेतस।
प्रतिश्रुत्य च रामस्य भार्याहीनस्य भूपते॥ ४४

साहाय्यं ते करोमीति देवाग्निजलसंनिधौ।
ये ये च शत्रवो राजंस्ते ते च मम शत्रवः॥ ४५

मित्राणि यानि ते देव तानि मित्राणि मे सदा।
सीतामन्वेषितुं राजन् वानरैर्बहुभिर्वृतः॥ ४६

सत्यं यास्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा कोऽन्यथाकरोत्।
त्वामृते पापिनं दुष्टं रामदेवस्य संनिधौ॥ ४७

कारयित्वा तु तेनैवं स्वकार्यं दुष्टवानर।
ऋषीणां सत्यवद्वाक्यं त्वयि दृष्टं मयाधुना॥ ४८

सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्॥ ४९

'लक्ष्मण! तुम पम्पापुरमें जाओ। देखो, क्या कारण है कि वह दुष्ट वानरराज अभीतक नहीं आया। पहले तो वह यही कहकर गया था कि 'वर्षाकाल बीतनेपर मैं अनेक वानरोंके साथ आपके पास आऊँगा।' अब तुम जहाँ वह वानरराज रहता है, वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ। ताराके साथ रमण करनेवाले उस दुष्ट वानरको आगे करके समस्त वानरसेनाके सहित मेरे पास शीघ्र ले आओ। यदि ऐश्वर्य प्राप्त कर लेनेके कारण मदमें चूर हो सुग्रीव यहाँ न आये तो तुम उस असत्यवादीसे यों कहना—'अरे दुष्ट! श्रीरामने कहा है कि जिससे वालिका वध किया गया था, वह बाण आज भी मेरे हाथमें मौजूद है; अतः वानर! इस बातको याद करके तू श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन कर; इसीमें तेरा भला है''॥ ३३—४०॥

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसी आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और उनको नमस्कार करके वे पम्पापुरमें गये, जहाँ सुग्रीव रहता था। वहाँ उन्होंने वानरराज सुग्रीवको देखकर कहा—''अरे! तू श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे मुँह मोड़कर यहाँ ताराके साथ भोग-विलासमें फँसा हुआ है? रे दुर्बुद्धे! तूने श्रीरामके सामने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'जहाँ-कहीं भी हो, सीताको ढूँढ़कर मैं आपको अर्पित करूँगा' उसे क्या भूल गया? अरे पापात्मा वानरराज! जिन्होंने वालिको मारकर पहले ही तुम्हें राज्य दे दिया, ऐसे परोपकारी मित्रका तेरे सिवा कौन अनादर कर सकता है? तूने देवता, अग्नि और जलके निकट श्रीरामसे यह प्रतिज्ञा की थी कि 'राजन्! मैं पत्नीसे वियुक्त हुए आपकी सहायता करूँगा। राजन्! जो-जो आपके शत्रु हैं, वे-वे मेरे भी शत्रु हैं तथा देव! जो-जो आपके मित्र हैं, वे-वे मेरे भी सदा ही मित्र हैं। राजन्! मैं बहुत-से वानरोंके साथ सीताकी खोज करानेके लिये अवश्य ही आपके पास आऊँगा।' भगवान् श्रीरामके निकट यों कहकर तुझ-जैसे दुष्ट पापीके सिवा दूसरा कौन है, जो इसके विपरीत आचरण करता। अरे दुष्ट वानर! इस प्रकार तूने अपना काम तो उनसे करा लिया और उनका कार्य करना तू भूल गया! इस समय ऋषियोंकी यह यथार्थ बात कि 'अपना काम सिद्ध हो जानेपर सभीकी बुद्धि बदल जाती है, जैसे बछड़ा माताके थनोंमें दूधकी कमी देखकर उसे छोड़ देता है [फिर माताकी परवा नहीं करता]'

जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम्।
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः॥ ५०
शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
कृतघ्नस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा॥ ५१
कृतघ्नता न कार्या ते त्वत्कृतं समयं स्मर।
एह्येह्यागच्छ शरणं काकुत्स्थं हितपालकम्॥ ५२
यदि नायासि च कपे रामवाक्यमिदं शृणु।
नयिष्ये मृत्युसदनं सुग्रीवं वालिनं यथा॥ ५३
स शरो विद्यतेऽस्माकं येन वाली हतः कपिः।
लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ सुग्रीवः कपिनायकः॥ ५४
निर्गत्य तु नमश्चक्रे लक्ष्मणं मन्त्रिणोदितः।
उवाच च महात्मानं लक्ष्मणं वानराधिपः॥ ५५
अज्ञानकृतपापानामस्माकं क्षन्तुमर्हसि।
समयः कृतो मया राज्ञा रामेणामिततेजसा॥ ५६
यस्तदानीं महाभाग तमद्यापि न लङ्घये।
यास्यामि निखिलैरद्य कपिभिर्नृपनन्दन॥ ५७
त्वया सह महावीर रामपार्श्वं न संशयः।
मां दृष्ट्वा तत्र काकुत्स्थो यद्वक्ष्यति च मां प्रति॥ ५८
तत्सर्वं शिरसा गृह्य करिष्यामि न संशयः।
सन्ति मे हरयः शूराः सीतान्वेषणकर्मणि॥ ५९
तान्यहं प्रेषयिष्यामि दिक्षु सर्वासु पार्थिव।
इत्युक्तः कपिराजेन सुग्रीवेण स लक्ष्मणः॥ ६०
एहि शीघ्रं गमिष्यामो रामपार्श्वमितोऽधुना।
सेना चाहूयतां वीर ऋक्षाणां हरिणामपि॥ ६१
यां दृष्ट्वा प्रीतिमभ्येति राघवस्ते महामते।
इत्युक्तो लक्ष्मणेनाथ सुग्रीवः स तु वीर्यवान्॥ ६२
पार्श्वस्थं युवराजानमङ्गदं संज्ञयाब्रवीत्।
सोऽपि निर्गत्य सेनानीमाह सेनापतिं तदा॥ ६३
तेनाहूताः समागत्य ऋक्षवानरकोटयः।
गुहास्थाश्च गिरिस्थाश्च वृक्षस्थाश्चैव वानराः॥ ६४
तैः सार्धं पर्वताकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः।
सुग्रीवः शीघ्रमागत्य ववन्दे राघवं तदा॥ ६५
लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामं भ्रातरमब्रवीत्।
प्रसादं कुरु सुग्रीवे विनीते चाधुना नृप॥ ६६

मुझे तुझमें ही ठीक-ठीक घटती-सी दीख रही है। संसारमें जो मनुष्योचित सद्व्यवहारका ज्ञान रखनेवाले हैं, उन सर्वज्ञ महात्माओंमेंसे मैं किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो लोकमें दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारको न मानता हो। शास्त्रोंमें महापातकी पुरुषोंके भी उद्धारका उपाय (प्रायश्चित्त) देखा गया है, किंतु दुष्ट वानर! कृतघ्न पुरुषके उद्धारका उपाय मैंने पहले कभी नहीं देखा है। इसलिये तुझे कभी कृतघ्नता नहीं करनी चाहिये। अपनी की हुई प्रतिज्ञाको याद कर। अब आ, तेरे हितकी रक्षा करनेवाले ककुत्स्थकुलनन्दन भगवान् श्रीरामकी शरणमें चल। वानर! यदि तू नहीं आना चाहता तो यह श्रीरामका वचन सुन। [उन्होंने कहा है—] 'मैं वालिकी ही भाँति सुग्रीवको भी यमपुर भेज दूँगा। जिससे वानरराज वालि मारा गया है, वह बाण अब भी मेरे पास मौजूद है''॥ ४१—५३½॥

लक्ष्मणके इस प्रकार कहनेपर कपिराज सुग्रीव मन्त्रीकी प्रेरणासे बाहर निकले। उन्होंने लक्ष्मणको प्रणाम किया और उन महात्मासे कहा—'महाभाग! हमारे अज्ञानवश किये हुए अपराधोंको आप क्षमा करें। मैंने उस समय अमिततेजस्वी राजा रामचन्द्रके साथ जो प्रतिज्ञा की थी, उसका अब भी उल्लङ्घन नहीं करूँगा। महावीर राजकुमार! मैं अब समस्त वानरोंको साथ लेकर आपके साथ श्रीरामके पास चलूँगा। मुझे वहाँ देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुझसे जो कुछ भी कहेंगे, उसे मैं शिरोधार्य करके निस्संदेह पूर्ण करूँगा। राजन्! मेरे यहाँ बड़े-बड़े वीर वानर हैं। उन सबको मैं सीताजीकी खोज करनेके लिये समस्त दिशाओंमें भेजूँगा'॥ ५४—५९½॥

वानरराज सुग्रीवके यों कहनेपर लक्ष्मणने कहा—'आओ! अब यहाँसे शीघ्र ही श्रीरामके पास चलें। वीर! महामते! वानरों और भालुओंकी सेना भी बुला लो, जिसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी तुमपर प्रसन्न हों।' लक्ष्मणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी सुग्रीवने पास ही खड़े हुए युवराज अङ्गदसे इशारेमें कुछ कहा। अङ्गदने भी जाकर सेनाका संचालन करनेवाले सेनापतिको प्रेरित किया। सेनापतिके बुलानेसे पर्वत, कन्दरा और वृक्षोंपर रहनेवाले करोड़ों वानर आये। पर्वतोंके समान आकारवाले उन भयंकर पराक्रमी वानरोंके साथ सुग्रीवने उस समय शीघ्रतापूर्वक पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। साथ ही लक्ष्मणजीने भी अपने भाईको प्रणाम करके कहा—'राजन्! इन विनयशील सुग्रीवपर अब आप कृपा करें'॥ ६०—६६॥

इत्युक्तो राघवस्तेन भ्रात्रा सुग्रीवमब्रवीत्।
आगच्छात्र महावीर सुग्रीव कुशलं तव॥ ६७

श्रुत्वेत्थं रामवचनं प्रसन्नं च नराधिपम्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सुग्रीवो राममब्रवीत्॥ ६८

तदा मे कुशलं राजन् सीतादेवी तव प्रभो।
अन्विष्य तु यदा दत्ता मया भवति नान्यथा॥ ६९

इत्युक्ते वचने तेन हनूमान्मारुतात्मजः।
नत्वा रामं बभाषैनं सुग्रीवं कपिनायकम्॥ ७०

शृणु सुग्रीव मे वाक्यं राजायं दुःखितो भृशम्।
सीतावियोगेन च सदा नाश्नाति च फलादिकम्॥ ७१

अस्य दुःखेन सततं लक्ष्मणोऽयं सुदुःखितः।
एतयोरत्र यावस्था तां श्रुत्वा भरतोऽनुजः॥ ७२

दुःखी भवति तद्दुःखाद्दुःखं प्राप्नोति तज्जनः।
यत एवमतो राजन् सीतान्वेषणमाचर॥ ७३

इत्युक्ते वचने तत्र वायुपुत्रेण धीमता।
जाम्बवानतितेजस्वी नत्वा रामं पुरःस्थितः॥ ७४

स प्राह कपिराजं तं नीतिमान् नीतिमद्वचः।
यदुक्तं वायुपुत्रेण तत्तथेत्यवगच्छ भोः॥ ७५

यत्र क्वापि स्थिता सीता रामभार्या यशस्विनी।
पतिव्रता महाभागा वैदेही जनकात्मजा॥ ७६

अद्यापि वृत्तसम्पन्ना इति मे मनसि स्थितम्।
न हि कल्याणचित्तायाः सीतायाः केनचिद्भुवि॥ ७७

पराभवोऽस्ति सुग्रीव प्रेषयाद्यैव वानरान्।
इत्युक्तस्तेन सुग्रीवः प्रीतात्मा कपिनायकः॥ ७८

पश्चिमायां दिशि तदा प्रेषयामास तान् कपीन्।
अन्वेष्टुं रामभार्यां तां महाबलपराक्रमः॥ ७९

उत्तरस्यां दिशि तदा नियुतान् वानरानसौ।
प्रेषयामास धर्मात्मा सीतान्वेषणकर्मणि॥ ८०

भाई लक्ष्मणके इस प्रकार अनुरोध करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा—'महावीर सुग्रीव! यहाँ आओ। कहो, कुशल तो है न?' श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा कथन सुनकर और उन नरेशको प्रसन्न जानकर सुग्रीवने सिरपर अञ्जलि जोड़ उनसे कहा—'राजन्! प्रभो! मेरी कुशल तो तभी होगी, जब मैं सीतादेवीको ढूँढ़कर आपको अर्पित कर दूँ; नहीं तो नहीं'॥ ६७—६९॥

सुग्रीवने जब यह बात कही, तब पवनकुमार हनूमान्‌जी श्रीरामको नमस्कार करके कपिराज सुग्रीवसे बोले—'सुग्रीव! आप मेरी बात सुनें। ये राजा श्रीरामचन्द्रजी सीताके वियोगसे सदा ही बहुत दुःखी रहते हैं, इसीलिये फल आदिका भी आहार नहीं करते। इन्हींके दुःखसे ये लक्ष्मण भी सदा अत्यन्त दुःखित रहा करते हैं। इन दोनोंकी यहाँ जो अवस्था है, उसे सुनकर इनके छोटे भाई भरत भी दुःखी होते हैं और उनके दुःखसे वहाँके सभी लोग दुःखमें पड़े रहते हैं। राजन्! चूँकि ऐसी स्थिति है, अतः आप बहुत शीघ्र सीताकी खोज कराइये'॥ ७०—७३॥

बुद्धिमान् वायुनन्दनके यों कहनेपर अत्यन्त तेजस्वी जाम्बवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। वे नीतिज्ञ थे, अतः कपिराज सुग्रीवसे नीतियुक्त वचन बोले—'सुग्रीव! हनुमान्‌जीने जो कहा है, उसे आप ठीक ही समझें। श्रीरामचन्द्रजीकी यशस्विनी भार्या विदेहकुलनन्दिनी जनककुमारी महाभागा पतिव्रता सीता जहाँ-कहीं भी होंगी, आज भी सदाचारसे सम्पन्न होंगी—यह विचार मेरे मनमें निश्चितरूपसे जमा हुआ है। सुग्रीव! सदा कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीमें ही मन लगाये रहनेवाली सीताजीका इस पृथ्वीपर किसीके द्वारा भी पराभव नहीं हो सकता। इसलिये आप अभी वानरोंको भेजें'॥ ७४—७७½॥

जाम्बवान्‌के इस प्रकार कहनेपर महान् बल और पराक्रमसे युक्त कपिराज सुग्रीवने प्रसन्न हो सीताकी खोजके लिये बहुत-से वानरोंको पश्चिम दिशामें भेजा तथा उन धर्मात्माने उत्तर दिशामें भी सीताको ढूँढ़नेके निमित्त एक लाख वानरोंको उसी समय भेज दिया।

पूर्वस्यां दिशि कर्पींश्च कपिराजः प्रतापवान्।
प्रेषयामास रामस्य सुभार्यान्वेषणाय वै॥ ८१

इति तान् प्रेषयामास वानरान् वानराधिपः।
सुग्रीवो वालिपुत्रं तमङ्गदं प्राह बुद्धिमान्॥ ८२

त्वं गच्छ दक्षिणं देशं सीतान्वेषणकर्मणि।
जाम्बवांश्च हनूमांश्च मैन्दो द्विविद एव च॥ ८३

नीलाद्याश्चैव हरयो महाबलपराक्रमाः।
अनुयास्यन्ति गच्छन्तं त्वामद्य मम शासनात्॥ ८४

अचिरादेव यूयं तां दृष्ट्वा सीतां यशस्विनीम्।
स्थानतो रूपतश्चैव शीलतश्च विशेषतः॥ ८५

केन नीता च कुत्रास्ते ज्ञात्वात्रागच्छ पुत्रक।
इत्युक्तः कपिराजेन पितृव्येण महात्मना॥ ८६

अङ्गदस्तूर्णमुत्थाय तस्याज्ञां शिरसा दधे।
इत्युक्ते दूरतः स्थाप्य वानरानथ जाम्बवान्॥ ८७

रामं च लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं मारुतात्मजम्।
एकतः स्थाप्य तानाह नीतिमान् नीतिमद्वचः॥ ८८

श्रूयतां वचनं मेऽद्य सीतान्वेषणकर्मणि।
श्रुत्वा च तद्गृहाण त्वं रोचते यन्नृपात्मज॥ ८९

रावणेन जनस्थानान्नीयमाना तपस्विनी।
जटायुषा तु सा दृष्टा शक्त्या युद्धं प्रकुर्वता॥ ९०

भूषणानि च दृष्टानि तया क्षिप्तानि तेन वै।
तान्यस्माभिः प्रदृष्टानि सुग्रीवायार्पितानि च॥ ९१

जटायुवाक्याद्राजेन्द्र सत्यमित्यवधारय।
एतस्मात्कारणात्सीता नीता तेनैव रक्षसा॥ ९२

रावणेन महाबाहो लङ्कायां वर्तते तु सा।
त्वां स्मरन्ती तु तत्रस्था त्वद्दुःखेन सुदुःखिता॥ ९३

रक्षन्ती यत्नतो वृत्तं तत्रापि जनकात्मजा।
त्वद्ध्यानेनैव स्वान् प्राणान्धारयन्ती शुभानना॥ ९४

इसी प्रकार प्रतापी वानरराजने पूर्व दिशामें भी रामकी श्रेष्ठ भार्या सीताका अन्वेषण करनेके लिये बहुत-से वानर भेजे। बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवने इस प्रकार वानरोंको भेज लेनेके बाद वालिकुमार अङ्गदसे कहा—'अङ्गद! तुम सीताकी खोज करनेके लिये दक्षिण दिशामें जाओ। मेरी आज्ञासे आज तुम्हारे चलते समय तुम्हारे साथ जाम्बवान्, हनूमान्, मैन्द, द्विविद और नील आदि महाबली एवं महापराक्रमी वानर जायँगे। बेटा! तुम सभी लोग बहुत शीघ्र जाकर यशस्विनी सीताका दर्शन करो और यह भी पता लगाओ, 'वे कैसे स्थानमें हैं, किस रूपमें हैं? विशेषतः उनका आचरण कैसा है? कौन उन्हें ले गया है? तथा उसने उन्हें कहाँ रखा है?'—यह सब जानकर शीघ्र लौट आओ''॥ ७८—८५½॥

अपने चाचा महात्मा सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर अङ्गदने तुरंत उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सुग्रीवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनकर नीतिज्ञ जाम्बवान्ने सब वानरोंको कुछ दूर खड़ा कर दिया और श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान्‌जीको एक जगह करके उनसे यह नीतियुक्त बात कही—'नृपनन्दन श्रीरामचन्द्रजी! सीताका अन्वेषण करनेके विषयमें इस समय आप मेरी एक बात सुनें और सुननेके बाद यदि वह अच्छी लगे तो उसे स्वीकार करें। जटायुने तपस्विनी सीताको जनस्थानसे रावणद्वारा ले जायी जाती हुई देखा था तथा उन्होंने उसके साथ यथाशक्ति युद्ध भी किया था। साथ ही, सीताजीने उस समय अपने आभूषण उतार फेंके थे, जिनको जटायुने और हम लोगोंने भी देखा था। उन आभूषणोंको हमने सुग्रीवको अर्पित कर दिया है। इस कारण राजेन्द्र! जटायुके कथनानुसार आप इस बातको सत्य समझें कि सीताजीको वही दुष्ट राक्षस रावण ले गया है और महाबाहो! वे इस समय लङ्कामें ही हैं। वहाँ रहकर भी वे आपके ही दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो निरन्तर आपका ही स्मरण किया करती हैं। जनकनन्दिनी सीता लङ्कामें रहकर भी अपने सदाचारकी यत्नपूर्वक रक्षा कर रही हैं। वे सुमुखी सीतादेवी आपके ही ध्यानसे अपने प्राणोंको धारण करती हुई

स्थिता प्रायेण ते देवी सीता दुःखपरायणा।
हितमेव च ते राजन्नुदधेर्लङ्घने क्षमम्॥ ९५

वायुपुत्रं हनूमन्तं त्वमत्रादेष्टुमर्हसि।
त्वं चाप्यर्हसि सुग्रीव प्रेषितुं मारुतात्मजम्॥ ९६

तमृते सागरं गन्तुं वानराणां न विद्यते।
बलं कस्यापि वा वीर इति मे मनसि स्थितम्॥ ९७

क्रियतां मद्वचः क्षिप्रं हितं पथ्यं च नः सदा।
उक्ते जाम्बवतैवं तु नीतिस्वल्पाक्षरान्विते॥ ९८

वाक्ये वानरराजोऽसौ शीघ्रमुत्थाय चासनात्।
वायुपुत्रसमीपं तु तं गत्वा वाक्यमब्रवीत्॥ ९९

शृणु मद्वचनं वीर हनुमन्मारुतात्मज।
अयमिक्ष्वाकुतिलको राजा रामः प्रतापवान्॥ १००

पितुरादेशमादाय भ्रातृभार्यासमन्वितः।
प्रविष्टो दण्डकारण्यं साक्षाद्धर्मपरायणः॥ १०१

सर्वात्मा सर्वलोकेशो विष्णुर्मानुषरूपवान्।
अस्य भार्या हृता तेन दुष्टेनापि दुरात्मना॥ १०२

तद्वियोगजदुःखार्तो विचिन्वंस्तां वने वने।
त्वया दृष्टो नृपः पूर्वमयं वीरः प्रतापवान्॥ १०३

एतेन सह संगम्य समयं चापि कारितम्।
अनेन निहतः शत्रुर्मम वालिर्महाबलः॥ १०४

अस्य प्रसादेन कपे राज्यं प्राप्तं मयाधुना।
मया च तत्प्रतिज्ञातमस्य साहाय्यकर्मणि॥ १०५

तत्सत्यं कर्तुमिच्छामि त्वद्बलान्मारुतात्मज।
उत्तीर्य सागरं वीर दृष्ट्वा सीतामनिन्दिताम्॥ १०६

भूयस्तर्तुं बलं नास्ति वानराणां त्वया विना।
अतस्त्वमेव जानासि स्वामिकार्यं महामते॥ १०७

बलवान्नीतिमांश्चैव दक्षस्त्वं दौत्यकर्मणि।
तेनैवमुक्तो हनुमान् सुग्रीवेण महात्मना॥ १०८

स्वामिनोऽर्थं न किं कुर्यामीदृशं किं नु भाषसे।
इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामस्तं पुरतः स्थितम्॥ १०९

प्रायः आपके ही वियोग-दुःखमें डूबी रहती हैं। इसलिये राजन्! इस समय आपके हितकी ही बात बता रहा हूँ, आप इस कार्यके लिये वायुपुत्र हनूमान्‌जीको आज्ञा दें; क्योंकि ये ही समुद्र लाँघनेमें समर्थ हैं और सुग्रीव! आपको भी चाहिये कि पवनकुमार हनुमान्‌जीको ही वहाँ भेजें; क्योंकि वानरोंमें उनके अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो समुद्रके पार जा सके तथा हे वीर! इनके बराबर किसीका बल भी नहीं है। बस, मेरे मनमें यही विचार है। मेरे कथनका शीघ्र पालन किया जाय; क्योंकि यह हमारे लिये सदा ही हितकर और लाभकारी होगा'॥ ८६—९७½॥

जाम्बवान्‌के इस प्रकार थोड़े अक्षरोंमें नीतियुक्त वचन कहनेपर वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही अपने आसनसे उठे और वायुनन्दन हनुमान्‌जीके निकट जाकर उनसे बोले—॥ ९८-९९॥

"पवनकुमार वीर हनुमान्‌जी! तुम मेरी बात सुनो। ये प्रतापी राजा श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंशके भूषण हैं। ये अपने पिताकी आज्ञा मानकर भाई और पत्नीके सहित दण्डकारण्यमें चले आये थे। सदैव धर्ममें तत्पर रहनेवाले ये श्रीराम समस्त लोकोंके ईश्वर और सबके आत्मा साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं। इस समय मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इनकी धर्मपत्नी सीताको दुष्ट दुरात्मा रावणने हर लिया है। ये प्रतापी वीर राजा उन्हींके वियोगजन्य दुःखसे पीड़ित हो वन-वनमें उन्हींकी खोज करते हुए आ रहे थे, जबकि तुमने इन्हें पहले-पहल देखा था। इनके साथ मिलकर हमने प्रतिज्ञा भी की थी। इन्होंने मेरे शत्रु महाबली वालिका वध किया तथा कपे! इन्हींकी कृपासे मैंने इस समय अपना राज्य प्राप्त किया है और मैंने भी इनकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की है। पवननन्दन! मैं अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम्हारे ही बलपर पूर्ण करना चाहता हूँ। वीर! समुद्रके पार जा पतिव्रता सीताको देखकर पुनः समुद्रके इस पार लौट आनेकी सामर्थ्य तुम्हारे सिवा वानरोंमेंसे किसीमें भी नहीं है। अतः महामते! तुम्हीं अपने स्वामीके कार्यको ठीक-ठीक जान सकते हो; क्योंकि तुम बलवान्, नीतिज्ञ और दूतकर्ममें दक्ष हो"॥ १००—१०७½॥

महात्मा सुग्रीवके यों कहनेपर हनुमान्‌जी बोले—'आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? भला, अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका कार्य क्या मैं नहीं करूँगा?' वायुनन्दनके

प्राह वाक्यं महाबाहुर्वाष्पसम्पूर्णलोचनः।
सीतां स्मृत्वा सुदुःखार्तः कालयुक्तममित्रजित्॥ ११०

त्वयि भारं समारोप्य समुद्रतरणादिकम्।
सुग्रीवः स्थाप्यते ह्यत्र मया सार्धं महामते॥ १११

हनूमंस्तत्र गच्छ त्वं मत्प्रीत्यै कृतनिश्चयः।
ज्ञातीनां च तथा प्रीत्यै सुग्रीवस्य विशेषतः॥ ११२

प्रायेण रक्षसा नीता भार्या मे जनकात्मजा।
तत्र गच्छ महावीर यत्र सीता व्यवस्थिता॥ ११३

यदि पृच्छति सादृश्यं मदाकारमशेषतः।
अतो निरीक्ष्य मां भूयो लक्ष्मणं च ममानुजम्॥ ११४

ज्ञात्वा सर्वाङ्गगं लक्ष्म सकलं चावयोरिह।
नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे मनसि स्थितम्॥ ११५

इत्युक्तो रामदेवेन प्रभञ्जनसुतो बली।
उत्थाय तत्पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिरुवाच तम्॥ ११६

जानामि लक्षणं सर्वं युवयोस्तु विशेषतः।
गच्छामि कपिभिः सार्धं त्वं शोकं मा कुरुष्व वै॥ ११७

अन्यच्च देह्यभिज्ञानं विश्वासो येन मे भवेत्।
सीतायास्तव देव्यास्तु राजन् राजीवलोचन॥ ११८

इत्युक्तो वायुपुत्रेण रामः कमललोचनः।
अङ्गुलीयकमुन्मुच्य दत्तवान् रामचिह्नितम्॥ ११९

तद्गृहीत्वा तदा सोऽपि हनूमान्मारुतात्मजः।
रामं प्रदक्षिणीकृत्य लक्ष्मणं च कपीश्वरम्॥ १२०

नत्वा ततो जगामाशु हनूमानञ्जनीसुतः।
सुग्रीवोऽपि च ताञ्छ्रुत्वा वानरान् गन्तुमुद्यतान्॥ १२१

आज्ञेयानाज्ञापयति वानरान् बलदर्पितान्।
शृण्वन्तु वानराः सर्वे शासनं मम भाषितम्॥ १२२

विलम्बनं न कर्तव्यं युष्माभिः पर्वतादिषु।
द्रुतं गत्वा तु तां वीक्ष्य आगन्तव्यमनिन्दिताम्॥ १२३

रामपत्नीं महाभागां स्थास्येऽहं रामसंनिधौ।
कर्तनं वा करिष्यामि अन्यथा कर्णनासयोः॥ १२४

इस प्रकार उत्तर देनेपर शत्रुविजयी महाबाहु राम सीताकी यादसे अत्यन्त दुःखी हो, आँखोंमें आँसू भरकर, सामने बैठे हुए हनुमान्‌जीसे समयोचित वचन बोले—'महामते! मैं समुद्रके पार जाने आदिका भार तुम्हारे ही ऊपर रखकर सुग्रीवको अपने साथ रखता हूँ। हनूमन्! तुम मेरी, इन वानर-बन्धुओंकी और विशेषतः सुग्रीवकी प्रसन्नताके लिये दृढ़ निश्चय करके वहाँ (लङ्कामें) जाओ। महावीर! प्रायः यही जान पड़ता है कि रावण नामक राक्षस ही सीताको ले गया है; अतः जहाँ सीता रखी गयी हो, वहाँ जाना। यदि वे पूछें कि 'तुम जिनके पाससे आते हो, उन श्रीराम और लक्ष्मणका स्वरूप कैसा है?' तो इसका उत्तर देनेके लिये तुम मेरे शरीरको तथा मेरे छोटे भाई लक्ष्मणको भी अच्छी तरह देख लो। हम दोनोंके शरीरका प्रत्येक चिह्न देखकर उनसे बताना। नहीं तो सीता तुमपर विश्वास नहीं कर सकतीं—यह मेरे मनका दृढ़ विचार है'॥ १०८—११५॥

भगवान् श्रीरामके यों कहनेपर महाबली वायुनन्दन हनुमान् उठकर उनके सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनसे बोले—'मैं आप दोनोंके सब लक्षण विशेषरूपसे जानता हूँ; अब मैं वानरोंके साथ जा रहा हूँ, आप खेद न करें। कमललोचन राजन्! इसके अतिरिक्त आप मुझे कोई पहचानकी वस्तु दीजिये, जिससे आपकी महारानी सीताका मुझपर विश्वास हो॥ ११६—११८॥

वायुनन्दन हनुमान्‌के इस प्रकार अनुरोध करनेपर कमलनयन श्रीरामने अपनी अँगूठी निकालकर दे दी, जिसपर 'राम' नाम खुदा हुआ था। उसे लेकर पवनकुमार हनूमान्‌ने भी श्रीराम, लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीवकी परिक्रमा की। फिर उन्हें प्रणामकर वे अञ्जनीनन्दन हनूमान् वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले। तब सुग्रीव भी अपने आज्ञाकारी एवं बलाभिमानी वानरोंके विषयमें यह जानकर कि वे जानेके लिये उद्यत हैं, उन्हें आदेश देते हुए बोले—'सभी वानर इस समय मेरी आज्ञा सुन लें—तुम पर्वतों और वनोंमें विलम मत जाना। शीघ्र जाकर महाभागा रामपत्नी पतिव्रता सीताका पता लगाकर लौट आना; मैं श्रीरामचन्द्रजी-के पास ठहरता हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाके विपरीत चलोगे तो मैं तुम्हारी नाक और कान काट लूँगा'॥ ११९—१२४॥

एवं तान् प्रेषयित्वा तु आज्ञापूर्वं कपीश्वरः।
अथ ते वानरा याताः पश्चिमादिषु दिक्षु वै॥ १२५
ते सानुषु समस्तेषु गिरीणामपि मूर्धसु।
नदीतीरेषु सर्वेषु मुनीनामाश्रमेषु च॥ १२६
कन्दरेषु च सर्वेषु वनेषूपवनेषु च।
वृक्षेषु वृक्षगुल्मेषु गुहासु च शिलासु च॥ १२७
सह्यपर्वतपार्श्वेषु विन्ध्यसागरपार्श्वयोः।
हिमवत्यपि शैले च तथा किम्पुरुषादिषु॥ १२८
मनुदेशेषु सर्वेषु सप्तपातालकेषु च।
मध्यदेशेषु सर्वेषु कश्मीरेषु महाबलाः॥ १२९
पूर्वदेशेषु सर्वेषु कामरूपेषु कोशले।
तीर्थस्थानेषु सर्वेषु सप्तकोङ्कणकेषु च॥ १३०
यत्र तत्रैव ते सीतामदृष्ट्वा पुनरागताः।
आगत्य ते नमस्कृत्य रामलक्ष्मणपादयोः॥ १३१
सुग्रीवं च विशेषेण नास्माभिः कमलेक्षणा।
दृष्टा सीता महाभागेत्युक्त्वा तांस्तत्र तस्थिरे॥ १३२
ततस्तं दुःखितं प्राह रामदेवं कपीश्वरः।
सीता दक्षिणदिग्भागे स्थिता द्रष्टुं वने नृप॥ १३३
शक्या वानरसिंहेन वायुपुत्रेण धीमता।
दृष्टा सीतामिहायाति हनूमान्नात्र संशयः॥ १३४
स्थिरो भव महाबाहो राम सत्यमिदं वचः।
लक्ष्मणोऽप्याह शकुनं तत्र वाक्यमिदं तदा॥ १३५
सर्वथा दृष्टसीतस्तु हनुमानागमिष्यति।
इत्याश्वास्य स्थितौ तत्र रामं सुग्रीवलक्ष्मणौ॥ १३६
अथाङ्गदं पुरस्कृत्य ये गता वानरोत्तमाः।
यत्नादन्वेषणार्थाय रामपत्नीं यशस्विनीम्॥ १३७
अदृष्ट्वा श्रममापन्नाः कृच्छ्रभूतास्तदा वने।
भक्षणेन विहीनास्ते क्षुधया च प्रपीडिताः॥ १३८
भ्रमद्भिर्गहनेऽरण्ये क्वापि दृष्टा च सुप्रभा।
गुहानिवासिनी सिद्धा ऋषिपत्नी ह्यनिन्दिता॥ १३९
सा च तानागतान्दृष्ट्वा स्वाश्रमं प्रति वानरान्।
आगताः कस्य यूयं तु कुतः किं नु प्रयोजनम्॥ १४०

कपिराज सुग्रीवने इस प्रकार आज्ञापूर्वक उन्हें भेजा और वे वानर पश्चिम आदि दिशाओंमें चल पड़े। समस्त पर्वतोंके सानुओं (उपत्यकाओं) और शिखरोंपर, सारी नदियोंके तटोंपर, मुनियोंके आश्रमोंमें, खड्डोंमें, सब प्रकारके वनों और उपवनोंमें, वृक्षों और झाड़ियोंमें, कन्दराओं तथा शिलाओंमें, सह्यपर्वतके आस-पास, विन्ध्याचल और समुद्रके निकट, हिमालय पर्वतपर किम्पुरुष आदि देशोंमें, समस्त मानवीय प्रदेशोंमें, सातों पातालोंमें, सम्पूर्ण मध्यप्रदेशोंमें, कश्मीरमें, पूर्वदिशाके सारे देशोंमें, कामरूप (आसाम) और कोशल (अवध)-में, सम्पूर्ण तीर्थ-स्थानोंमें तथा सातों कोङ्कण देशोंमें भी जहाँ-तहाँ सर्वत्र सीताकी खोज करते हुए वे महाबली वानर उन्हें न पाकर लौट आये। आकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें तथा विशेषतः सुग्रीवको प्रणाम किया और यह कहकर कि 'हमने कमललोचना महाभागा सीताको कहीं नहीं देखा', वहाँ खड़े हो गये॥ १२५—१३२॥

तब दुःखित हुए भगवान् रामसे कपिराज सुग्रीवने कहा—'राजन्! सीताजी दक्षिण दिशामें ही वनमें स्थित हैं; उन्हें वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् पवनकुमार ही देख सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि हनूमान्‌जी सीताको देखकर ही आयेंगे। महाबाहु श्रीराम! आप धैर्य धारण करें, मेरा यह कथन बिलकुल सत्य है।' तब लक्ष्मणने भी शकुन देखकर यह बात कही—'हनुमान् सर्वथा सीताको देखकर ही आयेंगे।' इस प्रकार सुग्रीव और लक्ष्मण भगवान् श्रीरामको सान्त्वना देते हुए उनके पास रहने लगे॥ १३३—१३६॥

इधर जो-जो श्रेष्ठ वानर अङ्गदजीको आगे करके यशस्विनी श्रीसीताजीकी यत्नपूर्वक खोज करनेके लिये गये थे, वे वनमें कहीं भी सीताजीका पता न पाकर बहुत थक गये तथा कष्टमें पड़ गये। यही नहीं, कुछ भोजन न मिलनेके कारण वे भूखसे भी बहुत पीड़ित हो गये। गहन वनमें घूमते हुए उन्होंने एक परम कान्तिमयी और उत्तम गुणोंवाली ऋषिपत्नी देखी, जो कन्दरामें निवास करनेवाली और सिद्धा थी। उसने उन वानरोंको अपने आश्रमपर आया देख पूछा—'आप लोग किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? और यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?'॥ १३७—१४०॥

इत्युक्ते जाम्बवानाह तां सिद्धां सुमहामतिः।
सुग्रीवस्य वयं भृत्या आगता ह्यत्र शोभने॥ १४१

रामभार्यार्थमनघे सीतान्वेषणकर्मणि।
कां दिग्भूता निराहारा अदृष्ट्वा जनकात्मजाम्॥ १४२

इत्युक्ते जाम्बवत्यत्र पुनस्तानाह सा शुभा।
जानामि रामं सीतां च लक्ष्मणं च कपीश्वरम्॥ १४३

भुङ्क्ष्वीध्वमत्र मे दत्तमाहारं च कपीश्वराः।
रामकार्यागतास्त्वत्र यूयं रामसमा मम॥ १४४

इत्युक्त्वा चामृतं तेषां योगाद्दत्त्वा तपस्विनी।
भोजयित्वा यथाकामं भूयस्तानाह तापसी॥ १४५

सीतास्थानं तु जानाति सम्पातिर्नाम पक्षिराट्।
आस्थितो वै वने सोऽपि महेन्द्रे पर्वते द्विजः॥ १४६

मार्गेणानेन हरयस्तत्र यूयं गमिष्यथ।
स वक्ति सीतां सम्पातिर्दूरदर्शी तु यः खगः॥ १४७

तेनादिष्टं तु पन्थानं पुनरासाद्य गच्छथ।
अवश्यं जानकीं सीतां द्रक्ष्यते पवनात्मजः॥ १४८

तयैवमुक्ताः कपयः परां प्रीतिमुपागताः।
हृष्टास्तेजनमापन्नास्तां प्रणम्य प्रतस्थिरे॥ १४९

महेन्द्राद्रिं गता वीरा वानरास्तद्दिदृक्षया।
तत्र सम्पातिमासीनं दृष्टवन्तः कपीश्वराः॥ १५०

तानुवाचाथ सम्पातिर्वानरानागतान्द्विजः।
के यूयमिति सम्प्राप्ताः कस्य वा ब्रूत मा चिरम्॥ १५१

इत्युक्ते वानरा ऊचुर्यथावृत्तमनुक्रमात्।
रामदूता वयं सर्वे सीतान्वेषणकर्मणि॥ १५२

प्रेषिताः कपिराजेन सुग्रीवेण महात्मना।
त्वां द्रष्टुमिह सम्प्राप्ताः सिद्धाया वचनाद्द्विज॥ १५३

सीतास्थानं महाभाग त्वं नो वद महामते।
इत्युक्तो वानरैः श्येनो वीक्षांचक्रे सुदक्षिणाम्॥ १५४

उसकी बात सुनकर महामति जाम्बवान्‌ने उस सिद्धा तपस्विनीसे कहा—'शोभने! पापहीने! हम सुग्रीवके भृत्य हैं, श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताकी खोज करनेके लिये यहाँ आये हैं। हम किस दिशाको जायँ, इसका ज्ञान हमें नहीं रह गया है। सीताजीका पता न पानेके कारण अभीतक हमने कुछ भोजन भी नहीं किया है'॥ १४१-१४२॥

जाम्बवान्‌के यों कहनेपर उस कल्याणी तपस्विनीने पुनः उन वानरोंसे कहा—'मैं श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और कपिराज सुग्रीवको भी जानती हूँ। वानरेन्द्रगण! आप लोग यहाँ मेरा दिया हुआ आहार ग्रहण करें। आप लोग श्रीरामचन्द्रजीके कार्यसे यहाँ आये हैं, अतः हमारे लिये श्रीरामचन्द्रजीके समान ही आदरणीय हैं।' यों कहकर उस तपस्विनीने अपने योगबलसे उन वानरोंको अमृतमय मधुर पदार्थ अर्पित किया तथा यथेष्ट भोजन कराकर पुनः उनसे कहा—'सीताका स्थान पक्षिराज सम्पातिको ज्ञात है। वे इसी वनमें महेन्द्रपर्वतपर रहते हैं। वानरगण! आप लोग इसी मार्गसे वहाँ पहुँच जायँगे। सम्पाति बहुत दूरतक देखनेवाले हैं, अतः वे सीताका पता बता देंगे। उनके बताये हुए मार्गसे आप लोग पुनः आगे जाइयेगा। जनकनन्दिनी सीताको ये पवनकुमार हनुमान्‌जी अवश्य देख लेंगे'॥ १४३—१४८॥

उसके इस प्रकार कहनेपर वानरगण बहुत ही प्रसन्न हुए; उन्हें बड़ा उत्साह मिला। फिर वे उस तपस्विनीको प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थित हुए। सम्पातिको देखनेकी इच्छासे वे वीर कपीश्वर महेन्द्रपर्वतपर गये तथा वहाँ बैठे हुए सम्पातिको उन्होंने देखा। तब पक्षिराज सम्पातिने वहाँ आये हुए वानरोंसे कहा—'आप लोग कौन हैं? किसके दूत हैं? कहाँसे आये हैं? शीघ्र बतायें'॥ १४९—१५१॥

सम्पातिके यों पूछनेपर वानरोंने सारा समाचार यथार्थरूपसे क्रमशः बताना आरम्भ किया—'पक्षिराज! हम सब श्रीरामचन्द्रजीके दूत हैं। कपिराज महात्मा सुग्रीवने हमें सीताजीकी खोजके लिये भेजा है। पक्षिवर! एक सिद्धाके कहनेसे हम आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। महामते! महाभाग! सीताके स्थानका पता आप हमें बता दें।' वानरोंके इस तरह अनुरोध करनेपर गृध्र सम्पातिने अपनी दृष्टि दक्षिण दिशाकी ओर दौड़ायी और पतिव्रता

सीतां दृष्ट्वा स लङ्कायामशोकाख्ये महावने।
स्थितेति कथितं तेन जटायुस्तु मृतस्तव॥ १५५

भ्रातेति चोचुः स स्नात्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
योगमास्थाय स्वं देहं विससर्ज महामतिः॥ १५६

ततस्तं वानरा दग्ध्वा दत्त्वा तस्योदकाञ्जलिम्।
गत्वा महेन्द्रशृङ्गं ते तमारुह्य क्षणं स्थिताः॥ १५७

सागरं वीक्ष्य ते सर्वे परस्परमथाब्रुवन्।
रावणेनैव भार्या सा नीता रामस्य निश्चितम्॥ १५८

सम्पातिवचनादद्य संज्ञातं सकलं हि तत्।
वानराणां तु कश्चात्र उत्तीर्य लवणोदधिम्॥ १५९

लङ्कां प्रविश्य दृष्ट्वा तां रामपत्नीं यशस्विनीम्।
पुनश्चोदधितरणे शक्तिं ब्रूत हि शोभनाः॥ १६०

इत्युक्तो जाम्बवान् प्राह सर्वे शक्तास्तु वानराः।
सागरोत्तरणे किंतु कार्यमन्यस्य सम्भवेत्॥ १६१

तत्र दक्षोऽयमेवात्र हनूमानिति मे मतिः।
कालक्षेपो न कर्तव्यो मासार्धमधिकं गतम्॥ १६२

यद्यदृष्ट्वा तु गच्छामो वैदेहीं वानरर्षभाः।
कर्णनासादि नः स्वाङ्गं निकृन्तति कपीश्वरः॥ १६३

तस्मात् प्रार्थ्यः स चास्माभिर्वायुपुत्रस्तु मे मतिः।
इत्युक्तास्ते तथेत्यूचुर्वानरा वृद्धवानरम्॥ १६४

ततस्ते प्रार्थयामासुर्वानराः पवनात्मजम्।
हनूमन्तं महाप्राज्ञं दक्षं कार्येषु चाधिकम्॥ १६५

गच्छ त्वं रामभृत्यस्त्वं रावणस्य भयाय च।
रक्षस्व वानरकुलमस्माकमञ्जनीसुत।
इत्युक्तस्तांस्तथेत्याह वानरान् पवनात्मजः॥ १६६

सीताको देखकर बताया—'सीताजी लङ्कामें अशोकवनके भीतर ठहरी हुई हैं।' तब वानरोंने कहा—'आपके भ्राता जटायुने सीताजीकी रक्षाके लिये ही प्राणत्याग किया है।' यह सुनकर महामति सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी और योगधारणाका आश्रय ले अपने शरीरको त्याग दिया॥ १५२—१५६॥

तदनन्तर वानरोंने सम्पातिके शवका दाह-संस्कार किया और उन्हें जलाञ्जलि दे, महेन्द्रपर्वतपर जाकर तथा उसके शिखरपर आरूढ़ हो, क्षणभर खड़े रहे। फिर समुद्रकी ओर देख वे सभी परस्पर कहने लगे—'रावणने ही भगवान् श्रीरामकी भार्या सीताका अपहरण किया है, यह बात निश्चित हो गयी। सम्पातिके वचनसे आज सब बातें ठीक-ठीक ज्ञात हो गयीं। शोभाशाली वानरो! अब आप सब लोग सोचकर बतायें कि यहाँ वानरोंमें कौन ऐसा वीर है, जो इस क्षार समुद्रके पार जा लङ्कामें घुसे और परम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीताजीका दर्शन करके पुनः समुद्रके पार लौट आनेमें समर्थ हो सके'॥ १५७—१६०॥

वानरोंकी यह बात सुनकर जाम्बवान्‌ने कहा—'समुद्रको पार करनेमें तो सभी वानर समर्थ हैं, परंतु यह कार्य एक अन्यतम वानरसे ही सिद्ध होगा। मेरे विचारमें तो यह आता है कि इस कार्यको सिद्ध करनेमें केवल हनूमान्‌जी ही समर्थ हैं। अब समय नहीं खोना चाहिये। हमारे लौटनेकी जो नियत अवधि थी। उससे पंद्रह दिन अधिक बीत गये हैं। वानरेन्द्रगण! यदि हमलोग सीताको देखे बिना ही लौट जायँगे तो कपिराज सुग्रीव हमारी नाक और कान काट लेंगे। इसलिये मेरी राय यह है कि हम सब लोग इस कार्यके लिये वायुनन्दन हनुमान्‌जीसे ही प्रार्थना करें'॥ १६१—१६३½॥

यह सुनकर उन वानरोंने वृद्ध जाम्बवान्‌जीसे कहा, 'अच्छा, ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् वे सभी वानर कार्यसाधनमें विशेष कुशल महाबुद्धिमान् पवननन्दन हनूमान्‌जीसे प्रार्थना करने लगे—'अञ्जनीनन्दन! आप श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय सेवक हैं। आप ही रावणको भय देनेके लिये लङ्कामें जायँ और हमारे वानरवृन्दकी रक्षा करें।' वानरोंके यों कहनेपर पवनकुमार हनुमान्‌जीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। एक तो श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा थी,

रामप्रयुक्तश्च पुनः स्वभर्तृणा
पुनर्महेन्द्रे कपिभिश्च नोदितः।
गन्तुं प्रचक्रे मतिमञ्जनीसुतः
समुद्रमुत्तीर्य निशाचरालयम्॥ १६७

फिर अपने स्वामी सुग्रीवने भी आदेश दिया था, इसके बाद महेन्द्रपर्वतपर उन वानरोंने भी उन्हें प्रेरित किया, अतः अञ्जनीकुमार हनुमान्‌जीने समुद्र लाँघकर निशाचरपुरी लङ्कामें जानेका निश्चय कर लिया॥ १६४—१६७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारकी कथाविषयक' पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

हनुमान्‌जीका समुद्र पार करके लङ्कामें जाना, सीतासे भेंट और लङ्काका दहन करके श्रीरामको समाचार देना

मार्कण्डेय उवाच

स तु रावणनीतायाः सीतायाः परिमार्गणम्।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि॥ १

अञ्जलिं प्राङ्मुखं कृत्वा सगणायात्मयोनये।
मनसाऽऽवन्द्य रामं च लक्ष्मणं च महारथम्॥ २

सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः।
ज्ञातींश्चैव परिष्वज्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्॥ ३

अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुण्यवायुनिषेवितम्।
पुनरागमनायेति वानरैरभिपूजितः॥ ४

अञ्जसा स्वं तथा वीर्यमाविवेशाथ वीर्यवान्।
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः॥ ५

सम्पूर्णमिव चात्मानं भावयित्वा महाबलः।
उत्पपात गिरेः शृङ्गान्निष्पीड्य गिरिमम्बरम्॥ ६

पितुर्मार्गेण यातस्य वायुपुत्रस्य धीमतः।
रामकार्यपरस्यास्य सागरेण प्रचोदितः॥ ७

विश्रामार्थं समुत्तस्थौ मैनाको लवणोदधेः।
तं निरीक्ष्य निपीड्याथ रयात्सम्भाष्य सादरम्॥ ८

मार्कण्डेयजी बोले—हनुमान्‌जीने रावणद्वारा हरी गयी सीताकी खोज करने तथा उनके स्थानका पता लगानेके लिये चारणोंके मार्ग (आकाश)-से जानेकी इच्छा की। पूर्वाभिमुख हो, हाथ जोड़कर उन्होंने देवगणोंसहित आत्मयोनि ब्रह्माजीको मन-ही-मन प्रणाम किया तथा श्रीराम और महारथी लक्ष्मणको भी मनसे ही प्रणाम करके सागर तथा सरिताओंको मस्तक नवाया। फिर अपने वानर-बन्धुओंको गले लगाकर उन सबकी प्रदक्षिणा की। तब अन्य सब वानरोंने यह आशीर्वाद दिया—'वीर! तुम (सकुशल) लौट आनेके लिये पवित्र वायुसे सेवित मार्गपर बिना विघ्न-बाधाके जाओ।' यों कहकर उन्होंने हनुमान्‌जीका सम्मान किया। फिर पराक्रमी पवनकुमार अपनी सहज शक्तिको प्राप्त हुए—उनमें वायुके सदृश बलका आवेश हो गया। दूरतकके मार्गका अवलोकन करते हुए उन्होंने ऊपर दृष्टि डाली। अपने-आपमें षड्विध ऐश्वर्यकी पूर्णताका-सा अनुभव करते हुए वे महाबली हनुमान् महेन्द्र पर्वतको पैरोंसे दबाकर उसके शिखरसे आकाशकी ओर उछले॥ १—६॥

बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीके कार्य-साधनमें तत्पर हो जब अपने पिता वायुके मार्गसे चले जा रहे थे, उस समय उनको थोड़ी देरतक विश्राम देनेके लिये, समुद्रद्वारा प्रेरित हो, मैनाक पर्वत पानीसे बाहर ऊपरकी ओर उठ गया। उसे देख उन्होंने वहाँ थोड़ा-सा रुककर उससे आदरपूर्वक बातचीत की और फिर उसे अपने वेगसे दबाकर उछलते हुए वे दूर चले गये।

उत्पतंश्च वने वीरः सिंहिकास्यं महाकपिः।
आस्यप्रान्तं प्रविश्याथ वेगेनान्तर्विनिस्सृतः॥ ९
निस्सृत्य गतवाञ्शीघ्रं वायुपुत्रः प्रतापवान्।
लङ्घयित्वा तु तं देशं सागरं पवनात्मजः॥ १०
त्रिकूटशिखरे रम्ये वृक्षाग्रे निपपात ह।
तस्मिन् स पर्वतश्रेष्ठे दिनं नीत्वा दिनक्षये॥ ११
संध्यामुपास्य हनुमान् रात्रौ लङ्कां शनैर्निशि।
लङ्काभिधां विनिर्जित्य देवतां प्रविवेश ह॥ १२
लङ्कामनेकरत्नाढ्यां बह्वाश्चर्यसमन्विताम्।
राक्षसेषु प्रसुप्तेषु नीतिमान् पवनात्मजः॥ १३
रावणस्य ततो वेश्म प्रविवेशाथ ऋद्धिमत्।
शयानं रावणं दृष्ट्वा तल्पे महति वानरः॥ १४
नासापुटैर्घोरकारैर्विंशद्भिर्वायुमोचकैः ।
तथैव दशभिर्वक्त्रैर्दंष्ट्रोपेतैस्तु संयुतम्॥ १५
स्त्रीसहस्थैस्तु दृष्ट्वा तं नानाभरणभूषितम्।
तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे॥ १६
तथा शयानं स्वगृहे राक्षसानां च नायकम्।
दुःखितो वायुपुत्रस्तु सम्पातेर्वचनं स्मरन्॥ १७
अशोकवनिकां प्राप्तो नानापुष्पसमन्विताम्।
जुष्टां मलयजातेन चन्दनेन सुगन्धिना॥ १८
प्रविश्य शिंशपावृक्षमाश्रितां जनकात्मजाम्।
रामपत्नीं समद्राक्षीद् राक्षसीभिः सुरक्षिताम्॥ १९
अशोकवृक्षमारुह्य पुष्पितं मधुपल्लवम्।
आसांचक्रे हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन्॥ २०
सीतां निरीक्ष्य वृक्षाग्रे यावदास्तेऽनिलात्मजः।
स्त्रीभिः परिवृतस्तत्र रावणस्तावदागतः॥ २१
आगत्य सीतां प्राहाथ प्रिये मां भज कामुकम्।
भूषिता भव वैदेहि त्यज रामगतं मनः॥ २२
इत्येवं भाषमाणं तमन्तर्धाय तृणं ततः।
प्राह वाक्यं शनैः सीता कम्पमानाथ रावणम्॥ २३
गच्छ रावण दुष्ट त्वं परदारपरायण।
अचिराद्रामबाणास्ते पिबन्तु रुधिरं रणे॥ २४

मार्गमें सिंहिका नामकी राक्षसी थी। उसने जलमें मुँह फैला रखा था। महाकपि हनुमान्‌जी उसके मुँहमें जा पड़े। मुँहमें पड़ते ही वे वेगपूर्वक उसके भीतर घुसकर पुनः बाहर निकल आये। इस प्रकार सिंहिकाके मुखसे निकलकर प्रतापी पवनकुमार उस समुद्र-प्रदेशको लाँघते हुए त्रिकूट पर्वतके सुरम्य शिखरपर एक महान् वृक्षके ऊपर जा उतरे। उसी उत्तम पर्वतपर दिन बिताकर हनुमान्‌जीने वहीं सायंकालकी संध्योपासना की। फिर रातमें धीरे-धीरे वे लङ्काकी ओर चले। मार्गमें मिली हुई 'लङ्का' नामकी नगर-देवताको जीतकर उन्होंने नाना रत्नोंसे सम्पन्न और अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त लङ्कापुरीमें प्रवेश किया॥ ७—१२½॥

तदनन्तर जब सब राक्षस गहरी नींदमें सो गये, तब नीतिज्ञ हनुमान्‌जीने रावणके समृद्धिशाली भवनमें प्रवेश किया। वहाँ रावण एक बहुत बड़े पलंगपर सो रहा था। हनुमान्‌जीने देखा—साँस छोड़नेवाले बीस भयंकर नासिका-छिद्रोंसे युक्त उसके दसों मुखोंमें बड़ी भयानक दाढ़ें थीं। नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रावण हजारों स्त्रियोंके साथ वहाँ सोया था। किंतु रावणके उस सुन्दर भवनमें सीताजी कहीं नहीं दिखायी दीं। वह राक्षसराज अपने घरके भीतर गाढ़ निद्रामें सो रहा था। सीताजीका दर्शन न होनेसे वायुनन्दन हनुमान्‌जी बहुत दुःखी हुए। फिर सम्पातिके कथनको याद करके वे अशोकवाटिकामें आये, जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित और अत्यन्त सुगन्धित मलयज-चन्दनसे व्याप्त थी॥ १३—१८॥

वाटिकामें प्रवेश करके हनुमान्‌जीने अशोकवृक्षके नीचे बैठी हुई जनकनन्दिनी श्रीरामपत्नी सीताको देखा, जो राक्षसियोंसे सुरक्षित थीं। वह अशोकवृक्ष सुन्दर मृदुल पल्लवोंसे विलसित और पुष्पोंसे सुशोभित था। कपिवर हनुमान्‌जी उस वृक्षपर चढ़ गये और 'ये ही सीता हैं'—यह सोचते हुए वहीं बैठ गये। सीताजीका दर्शन करके वे पवनकुमार ज्यों ही वृक्षके शिखरपर बैठे, त्यों ही रावण बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया। आकर उसने सीतासे कहा—'प्रिये! मैं कामपीड़ित हूँ, मुझे स्वीकार करो। वैदेहि! अब शृङ्गार धारण करो और श्रीरामकी ओरसे मन हटा लो।' इस प्रकार कहते हुए रावणसे भयवश काँपती हुई सीताजी बीचमें तिनकेकी ओट रखकर धीरे-धीरे बोलीं—'परस्त्रीसेवी दुष्ट रावण! तू चला जा। मैं शाप देती हूँ—भगवान् श्रीरामके बाण शीघ्र ही रणभूमिमें तुम्हारा रक्त पीयें'॥ १९—२४॥

तथेत्युक्तो भर्त्सितश्च राक्षसीराह राक्षसः।
द्विमासाभ्यन्तरे चैनां वशीकुरुत मानुषीम्॥ २५
यदि नेच्छति मां सीता ततः खादत मानुषीम्।
इत्युक्त्वा गतवान् दुष्टो रावणः स्वं निकेतनम्॥ २६
ततो भयेन तां प्राहू राक्षस्यो जनकात्मजाम्।
रावणं भज कल्याणि सधनं सुखिनी भव॥ २७
इत्युक्ता प्राह ताः सीता राघवोऽलघुविक्रमः।
निहत्य रावणं युद्धे सगणं मां नयिष्यति॥ २८
नाहमन्यस्य भार्या स्यामृते रामं रघूत्तमम्।
स ह्यागत्य दशग्रीवं हत्वा मां पालयिष्यति॥ २९
इत्याकर्ण्य वचस्तस्या राक्षस्यो ददृशुर्भयम्।
हन्यतां हन्यतामेषा भक्ष्यतां भक्ष्यतामियम्॥ ३०
ततस्तास्त्रिजटा प्राह स्वप्ने दृष्टमनिन्दिता।
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो रावणस्य विनाशनः॥ ३१
रक्षोभिः सह सर्वैस्तु रावणस्य मृतिप्रदः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामस्य विजयप्रदः॥ ३२
स्वप्नः शुभो मया दृष्टः सीतायाश्च पतिप्रदः।
त्रिजटावाक्यमाकर्ण्य सीतापार्श्वं विसृज्य ताः॥ ३३
राक्षस्यस्ता ययुः सर्वाः सीतामाहाञ्जनीसुतः।
कीर्तयन् रामवृत्तान्तं सकलं पवनात्मजः॥ ३४
तस्यां विश्वासमानीय दत्त्वा रामाङ्गुलीयकम्।
सम्भाष्य लक्षणं सर्वं रामलक्ष्मणयोस्ततः॥ ३५
महत्या सेनया युक्तः सुग्रीवः कपिनायकः।
तेन सार्धमिहागत्य रामस्तव पतिः प्रभुः॥ ३६
लक्ष्मणश्च महावीरो देवरस्ते शुभानने।
रावणं सगणं हत्वा त्वामितोऽऽदाय गच्छति॥ ३७
इत्युक्ते सा तु विश्वस्ता वायुपुत्रमथाब्रवीत्।
कथमत्रागतो वीर त्वमुत्तीर्य महोदधिम्॥ ३८
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पुनस्तामाह वानरः।
गोष्पदवन्मयोत्तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने॥ ३९

सीताजीका यह उत्तर और फटकार पाकर राक्षसराज रावणने राक्षसियोंसे कहा—'तुम लोग इस मानव-कन्याको दो महीनेके भीतर समझाकर मेरे वशीभूत कर दो। यदि इतने दिनोंतक इसका मन मेरी ओर न झुके तो इस मानुषीको तुम खा डालना।' यों कहकर दुष्ट रावण अपने महलमें चला गया। तब रावणके डरसे डरी हुई राक्षसियोंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—'कल्याणि! रावण बहुत धनी है, इसे स्वीकार कर लो और सुखसे रहो।' राक्षसियोंके यों कहनेपर सीताने उनसे कहा—'महापराक्रमी भगवान् श्रीराम युद्धमें रावणको उसके सेवकगणोंसहित मारकर मुझे ले जायँगे। मैं रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके सिवा दूसरेकी भार्या नहीं हो सकती। वे ही आकर रावणको मारकर मेरी रक्षा करेंगे'॥ २५—२९॥

सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियोंने उन्हें भय दिखाते हुए कहा—'अरी! इसे मार डालो, मार डालो; खा जाओ, खा जाओ।' उन राक्षसियोंमें एकका नाम त्रिजटा था। वह उत्तम विचार रखनेवाली—साध्वी स्त्री थी। उसने उन सभी राक्षसियोंको स्वप्नमें देखी हुई बात बतायी। वह बोली—'अरी दुष्टा राक्षसियो! सुनो; मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है, जो रावणके लिये विनाशकारी है, समस्त राक्षसोंके साथ रावणको मौतके मुँहमें डालनेवाला है, भ्राता लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी विजयका सूचक है और सीताको पतिसे मिलानेवाला है।' त्रिजटाकी बात सुनकर वे सभी राक्षसियाँ सीताके पाससे हटकर दूर चली गयीं। तब अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीने अपनेको सीताके सामने प्रकट किया और 'श्रीराम-नाम' का कीर्तन करते हुए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण वृत्तान्तका उनके समक्ष वर्णन किया। इस प्रकार सीताके मनमें विश्वास उत्पन्न करके उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी दी। फिर उनसे श्रीराम और लक्ष्मणके शरीरके लक्षण बताये और कहा—'सुमुखि! वानरोंके राजा सुग्रीव बहुत बड़ी सेनाके स्वामी हैं। उन्हींके साथ आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा आपके देवर महावीर लक्ष्मणजी यहाँ पधारेंगे और रावणको सेनासहित मारकर आपको यहाँसे ले जायँगे'॥ ३०—३७॥

हनुमान्‌जीके यह कहनेपर सीताजीका उनपर विश्वास हो गया। वे बोलीं—'वीर! तुम किस तरह महासागरको पार करके यहाँ चले आये?' उनका यह वचन सुनकर हनुमान्‌जीने पुनः उनसे कहा—'वरानने! मैं इस समुद्रको उसी प्रकार लाँघ गया, जैसे कोई गौके खुरसे बने हुए

जपतो रामरामेति सागरो गोष्पदायते।
दुःखमग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने॥ ४०

क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते।
इत्याश्वास्य सतीं सीतां दुःखितां जनकात्मजाम्॥ ४१

ततश्चूडामणिं प्राप्य श्रुत्वा काकपराभवम्।
नत्वा तां प्रस्थितो वीरो गन्तुं कृतमतिः कपिः॥ ४२

ततो विमृश्य तद्भद्क्त्वा क्रीडावनमशेषतः।
तोरणस्थो ननादोच्चै रामो जयति वीर्यवान्॥ ४३

अनेकान् राक्षसान् हत्वा सेनाः सेनापतींश्च सः।
तदा त्वक्षकुमारं तु हत्वा रावणसैनिकम्॥ ४४

साश्वं ससारथिं हत्वा इन्द्रजित्तं गृहीतवान्।
रावणस्य पुरः स्थित्वा रामं संकीर्त्य लक्ष्मणम्॥ ४५

सुग्रीवं च महावीर्यं दग्ध्वा लङ्कामशेषतः।
निर्भर्त्स्य रावणं दुष्टं पुनः सम्भाष्य जानकीम्॥ ४६

भूयः सागरमुत्तीर्य ज्ञातीनासाद्य वीर्यवान्।
सीतादर्शनमावेद्य हनूमांश्चैव पूजितः॥ ४७

वानरैः सार्धमागत्य हनुमान्मधुवनं महत्।
निहत्य रक्षपालांस्तु पाययित्वा च तन्मधु॥ ४८

सर्वे दधिमुखं पात्य हर्षितो हरिभिः सह।
खमुत्पत्य च सम्प्राप्य रामलक्ष्मणपादयोः॥ ४९

नत्वा तु हनुमांस्तत्र सुग्रीवं च विशेषतः।
आदितः सर्वमावेद्य समुद्रतरणादिकम्॥ ५०

कथयामास रामाय सीता दृष्टा मयेति वै।
अशोकवनिकामध्ये सीता देवी सुदुःखिता॥ ५१

गड्ढेको लाँघ जाय। जो 'राम-राम' का जप करता है, उसके लिये समुद्र गौके खुरके चिह्नके समान हो जाता है। शुभानने वैदेहि! आप दुःखमग्ना दिखायी देती हैं, अब धैर्य धारण कीजिये। मैं आपसे सत्य-सत्य कह रहा हूँ, आप बहुत शीघ्र श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगी।' इस प्रकार दुःखमें डूबी हुई पतिव्रता जनकनन्दिनी सीताको आश्वासन दे, उनसे पहचानके लिये चूड़ामणि पाकर और श्रीरामके प्रभावसे काकरूपी जयन्तके पराभवकी कथा सुनकर, वहाँसे चल देनेका विचार करके हनुमान्‌जीने सीताको नमस्कार करनेके पश्चात् प्रस्थान किया॥ ३८—४२॥

तत्पश्चात् कुछ सोचकर पराक्रमी हनुमान्‌जीने रावणके उस सम्पूर्ण क्रीडावन (अशोकवाटिका)-को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वनके द्वारपर स्थित हो, उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए बोले—'भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो!' फिर तो युद्धके लिये सामने आये हुए अनेक राक्षसोंको मारकर सेना और सेनापतियोंका संहार किया। इसके बाद रावणके सेनापति अक्षकुमारको अश्व तथा सारथिसहित यमलोक पहुँचा दिया। इसपर रावणपुत्र इन्द्रजित्‌ने वरके प्रभावसे उन्हें बंदी बना लिया। इसके बाद वे रावणके सम्मुख उपस्थित किये गये। वहाँसे छूटकर उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीवके यशका कीर्तन करते हुए सम्पूर्ण लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर दुष्टात्मा रावणको डाँट बताकर पुनः सीताजीसे वार्तालाप किया। फिर पराक्रमी हनुमान्‌जी समुद्रके इस पार आकर अपने वानर बन्धुओंसे मिले और सीताजीके दर्शनका समाचार सुनाकर सबसे सम्मानित हुए॥ ४३—४७॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी सभी वानरोंके साथ मधुवनमें आये। उसके रखवालोंको मारकर उन्होंने वहाँ सब साथियोंको मधु-पान कराया और स्वयं भी पीया। इस कार्यमें बाधा देनेवाले दधिमुख नामके वानरको सबने धरतीपर दे मारा। इसके बाद हनुमान्‌जी सब वानरोंके साथ आनन्दित हो, आकाशमें उछलते हुए श्रीराम और लक्ष्मणके निकट जा पहुँचे। वहाँ उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम कर, विशेषतः सुग्रीवको मस्तक झुकाकर उन्होंने समुद्र लाँघनेसे लेकर सारा समाचार आद्योपान्त सुनाया और यह भी कहा कि 'मैंने अशोक-वाटिकाके भीतर सीतादेवीका दर्शन किया।

राक्षसीभिः परिवृता त्वां स्मरन्ती च सर्वदा।
अश्रुपूर्णमुखी दीना तव पत्नी वरानना॥ ५२

शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा।
सर्वत्रान्वेषमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता॥ ५३

मया सम्भाषिता सीता विश्वस्ता रघुनन्दन।
अलङ्कारश्च सुमणिस्तया ते प्रेषितः प्रभो॥ ५४

इत्युक्त्वा दत्तवांस्तस्मै चूडामणिमनुत्तमम्।
इदं च वचनं तुभ्यं पत्न्या सम्प्रेषितं शृणु॥ ५५

चित्रकूटे मदङ्के तु सुप्ते त्वयि महाव्रत।
वायसाभिभवं राजंस्तत्किल स्मर्तुमर्हसि॥ ५६

अल्पापराधे राजेन्द्र त्वया बलिभुजि प्रभो।
यत्कृतं तन्न कर्तुं च शक्यं देवासुरैरपि॥ ५७

ब्रह्मास्त्रं तु तदोत्सृष्टं रावणं किं न जेष्यसि।
इत्येवमादि बहुशः प्रोक्त्वा सीता रुरोद ह।
एवं तु दुःखिता सीता तां मोक्तुं यत्नमाचर॥ ५८

इत्येवमुक्ते पवनात्मजेन
सीतावचस्तच्छुभभूषणं च।
श्रुत्वा च दृष्ट्वा च रुरोद रामः
कपिं समालिङ्ग्य शनैः प्रतस्थे॥ ५९

उन्हें राक्षसियाँ घेरे हुए थीं और वे बहुत दुःखी होकर निरन्तर आपका ही स्मरण कर रही थीं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी और वे बड़ी दीन अवस्थामें थीं। रघुनन्दन! आपकी धर्मपत्नी सुमुखी सीता वहाँ भी शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। मैंने सब जगह ढूँढ़ते हुए पतिव्रता जानकीको अशोकवनमें पाया, उनसे वार्तालाप किया और उन्होंने भी मेरा विश्वास किया। प्रभो! उन्होंने आपको देनेके लिये अपना श्रेष्ठ मणिमय अलङ्कार भेजा है'॥ ४८—५४॥

यह कहकर हनुमान्‌जीने भगवान् श्रीरामको वह उत्तम चूड़ामणि दे दी और कहा—'प्रभो! आपकी धर्मपत्नी श्रीसीताजीने यह संदेश भी कहला भेजा है, सुनिये—'महान् व्रतका पालन करनेवाले महाराज! चित्रकूट पर्वतपर जब आप मेरी गोदमें [सिर रखकर] सो गये थे, उस समय काकवेषधारी जयन्तका जो आपने मान-मर्दन किया था, उसे स्मरण करें। राजेन्द्र! प्रभो! उस कौएके थोड़े-से ही अपराधपर उसे दण्ड देनेके लिये आपने जो अद्भुत कर्म किया था, उसे देवता और असुर भी नहीं कर सकते। उस समय तो आपने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था? क्या इस समय इस रावणको पराजित नहीं करेंगे?' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर सीताजी रोने लगी थीं। यह है दुःखिनी सीताका वृत्तान्त! आप उन्हें उस दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न कीजिये।' पवनकुमार हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सीताजीका वह संदेश सुन और उनके उस सुन्दर आभूषणको देख, भगवान् श्रीराम उन कपिवर हनुमान्‌जीको गलेसे लगाकर रोने लगे और धीरे-धीरे वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ५५—५९॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीरामावतारकी कथाविषयक' इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

श्रीराम आदिका समुद्रतटपर जाना; विभीषणकी शरणागति और उन्हें लङ्काके राज्यकी प्राप्ति; समुद्रका श्रीरामको मार्ग देना; पुलद्वारा समुद्र पार करके वानरसेनासहित श्रीरामका सुवेल पर्वतपर पड़ाव डालना; अङ्गदका प्रभाव; लक्ष्मणकी प्रेरणासे श्रीरामका अङ्गदकी प्रशंसा करना; अङ्गदके वीरोचित उद्गार और दौत्यकर्म; वानर वीरोंद्वारा राक्षसोंका संहार; रावणका श्रीरामके द्वारा युद्धमें पराजित होना, कुम्भकर्णका वध; अतिकाय आदि राक्षस वीरोंका मारा जाना; मेघनादका पराक्रम और वध; रावणकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणका हनुमान्‌जीके द्वारा पुनर्जीवन; राम-रावण-युद्ध; रावण-वध; देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति; सीताके साथ अयोध्यामें आनेपर श्रीरामका राज्याभिषेक और अन्तमें पुरवासियोंसहित उनका परमधामगमन

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा प्रियावार्तां वायुपुत्रेण कीर्तिताम्।
रामो गत्वा समुद्रान्तं वानरैः सह विस्तृतैः॥ १
सागरस्य तटे रम्ये तालीवनविराजिते।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चाथ वानरैरतिहर्षितैः॥ २
संख्यातीतैर्वृतः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः।
अनुजेन च धीरेण वीक्ष्य तस्थौ सरित्पतिम्॥ ३
रावणेनाथ लङ्कायां स सूक्तौ भर्त्सितोऽनुजः।
विभीषणो महाबुद्धिः शास्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिः सह॥ ४
नरसिंहे महादेवे श्रीधरे भक्तवत्सले।
एवं रामेऽचलां भक्तिमागत्य विनयात्तदा॥ ५
कृताञ्जलिरुवाचेदं राममक्लिष्टकारिणम्।
राम राम महाबाहो देवदेव जनार्दन॥ ६
विभीषणोऽस्मि मां रक्ष अहं ते शरणं गतः।
इत्युक्त्वा निपपाताथ प्राञ्जली रामपादयोः॥ ७
विदितार्थोऽथ रामस्तु तमुत्थाप्य महामतिम्।
समुद्रतोयैस्तं वीरमभिषिच्य विभीषणम्॥ ८
लङ्काराज्यं तवैवेति प्रोक्तः सम्भाष्य तस्थिवान्।
ततो विभीषणेनोक्तं त्वं विष्णुर्भुवनेश्वरः॥ ९
अब्धिर्ददातु मार्गं ते देव तं याचयामहे।
इत्युक्तो वानरैः सार्धं शिश्ये तत्र स राघवः॥ १०

मार्कण्डेयजी बोले—वायुनन्दन हनुमान्‌जीके द्वारा कथित प्रिया जानकीका वृत्तान्त सुन लेनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी विशाल वानरसेनाके साथ समुद्रके निकट गये। साथ ही सुग्रीव और जाम्बवान् भी तालवनसे सुशोभित सागरके सुरम्य तटपर जा पहुँचे। अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे पूर्ण उन असंख्य वानरोंसे घिरे हुए श्रीमान् भगवान् राम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। अपने धीर-वीर अनुज लक्ष्मणजीके साथ समुद्रकी विशालताका अवलोकन करते हुए वे उसके तटपर ठहर गये। इधर लङ्कामें रावणने [राक्षसकुलके हितके लिये] अच्छी बात कहनेपर भी अपने छोटे भाई महाबुद्धिमान् विभीषणको बहुत फटकारा। तब वे अपने शास्त्रज्ञ मन्त्रियोंके साथ महान् देवता भक्तवत्सल लक्ष्मीपतिके अवतार नरश्रेष्ठ श्रीराममें अविचल भक्ति रखते हुए उनके निकट आये और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले उन भगवान् श्रीरामसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यों बोले—'महाबाहो श्रीराम! देवदेव जनार्दन! मैं [रावणका भाई] विभीषण हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ; मेरी रक्षा कीजिये'—यों कहकर हाथ जोड़े हुए वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीरामने उन महाबुद्धिमान् वीर विभीषणको उठाया और समुद्रके जलसे उनका राज्याभिषेक करके कहा—'अब लङ्काका राज्य तुम्हारा ही होगा।' श्रीरामके यों कहनेपर विभीषण उनके साथ बातचीत करके वहीं खड़े रहे॥ १—८½॥

तब विभीषणने कहा—'प्रभो! आप जगत्पति भगवान् विष्णु हैं। देव! ऐसी चेष्टा करें कि समुद्र ही आपको जानेका मार्ग दे दे। हम सब लोग उससे प्रार्थना करें।' उनके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ समुद्रके

सुप्ते रामे गतं तत्र त्रिरात्रममितद्युतौ।
ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामो राजीवलोचनः॥ ११

संशोषणमपां कर्तुमस्त्रमाग्नेयमाददे।
तदोत्थाय वचः प्राह लक्ष्मणश्च रुषान्वितम्॥ १२

क्रोधस्ते लयकर्ता हि एनं जहि महामते।
भूतानां रक्षणार्थाय अवतारस्त्वया कृतः॥ १३

क्षन्तव्यं देवदेवेश इत्युक्त्वा धृतवान् शरम्।
ततो रात्रित्रये याते क्रुद्धं राममवेक्ष्य सः॥ १४

आग्नेयास्त्राच्च संत्रस्तः सागरोऽभ्येत्य मूर्तिमान्।
आह रामं महादेवं रक्ष मामपकारिणम्॥ १५

मार्गो दत्तो मया तेऽद्य कुशलः सेतुकर्मणि।
नलश्च कथितो वीरस्तेन कारय राघव॥ १६

यावदिष्टं तु विस्तीर्णं सेतुबन्धनमुत्तमम्।
ततो नलमुखैरन्यैर्वानरैरमितौजसैः॥ १७

बन्धयित्वा महासेतुं तेन गत्वा स राघवः।
सुवेलाख्यं गिरिं प्राप्तः स्थितोऽसौ वानरैर्वृतः॥ १८

हर्म्यस्थलस्थितं दुष्टं रावणं वीक्ष्य चाङ्गदः।
रामादेशादथोत्प्लुत्य दूतकर्मसु तत्परः॥ १९

प्रादात्पादप्रहारं तु रोषाद्रावणमूर्धनि।
विस्मितं तैः सुरगणैर्वीक्षितः सोऽतिवीर्यवान्॥ २०

साधयित्वा प्रतिज्ञां तां सुवेलं पुनरागतः।
ततो वानरसेनाभिः संख्यातीताभिरच्युतः॥ २१

रुरोध रावणपुरीं लङ्कां तत्र प्रतापवान्।
रामः समन्तादालोक्य प्राह लक्ष्मणमन्तिके॥ २२

तीर्णोऽर्णवः कवलितेव कपीश्वरस्य
सेनाभटैर्झटिति राक्षसराजधानीम्।
यत्पौरुषोचितमिहाङ्कुरितं मया तद्
दैवस्य वश्यमपरं धनुषोऽथ वास्य॥ २३

तटपर धरना देते हुए लेट गये। अपार कान्तिमान् भगवान् श्रीरामको वहाँ लेटे-लेटे तीन रातें बीत गयीं; तब कमलनयन जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही क्रोध हुआ और उन्होंने समुद्रके जलको सुखा डालनेके लिये हाथमें अग्निबाण धारण किया। यह देख लक्ष्मणजी तत्काल उठे और क्रुद्ध हुए भगवान् रामसे यों बोले—॥ ९—१२॥

'महामते! आपका क्रोध तो समस्त ब्रह्माण्डका प्रलय करनेवाला है, इस समय इस कोपको दबा दें; क्योंकि आपने प्राणियोंकी रक्षाके लिये अवतार धारण किया है। देवदेव! आप क्षमा करें',—यों कहकर उन्होंने श्रीरामके उस बाणको पकड़ लिया। इधर तीन रात बीत जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको कुपित देख, उनके अग्निबाणसे भयभीत हो, समुद्र मनुष्यरूप धारणकर उनके निकट आया और महान् देवता भगवान् श्रीरामसे बोला—'भगवन्! मुझ अपराधीकी रक्षा कीजिये। रघुनन्दन! अब मैंने आपको जानेका मार्ग दे दिया। आपकी सेनामें वीरवर नल पुल बनानेमें निपुण कहे गये हैं। उनके द्वारा आपको जितना बड़ा अभीष्ट हो, उतने ही बड़े उत्तम पुलका निर्माण करा लीजिये'॥ १३—१६½॥

तब भगवान् रामने नल आदि अन्य अमित-तेजस्वी वानरोंद्वारा बहुत बड़ा पुल बनवाया और उसीके द्वारा समुद्रके पार जा, सुवेल नामक पर्वतपर पहुँचकर वहीं वानरोंके साथ डेरा डाल दिया। वहाँसे अङ्गदने देखा—'दुष्ट रावण महलकी अट्टालिकापर बैठा हुआ है।' उसे देखते ही वे भगवान् श्रीरामकी आज्ञा ले, दूत-कार्यमें संलग्न हो, उछलकर रावणके पास जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने रोषपूर्वक रावणके मस्तकपर लात मारी। उस समय देवताओंने महान् पराक्रमी अङ्गदजीकी ओर बड़े विस्मयके साथ देखा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पुनः सुवेल पर्वतपर चले आये। तदनन्तर प्रतापी भगवान् श्रीरामने असंख्य वानर-सेनाओंके द्वारा रावणकी पुरी लङ्काको चारों ओरसे घेर लिया॥ १७—२१½॥

तब श्रीरामने चारों ओर देख लक्ष्मणको पास बुलाकर कहा—'भाई! हम लोगोंने समुद्र तो पार कर लिया तथा कपिराज सुग्रीवके सैनिकोंने राक्षसोंकी राजधानी लङ्काको आनन-फाननमें अपना ग्रास-सा बना लिया है। पुरुषार्थसे जो कुछ सिद्ध होनेके योग्य था, उसका अङ्कुर तो हमने उत्पन्न कर दिया; अब आगे जो कुछ होना है, वह भाग्य अथवा इस धनुषके अधीन है'॥ २२-२३॥

लक्ष्मणः प्राह—**कातरजनमनोऽवलम्बिना किं दैवेन।**

यावल्ललाटशिखरं भ्रुकुटिर्न याति
यावन्न कार्मुकशिखामधिरोहति ज्या।
तावन्निशाचरपतेः पटिमानमेतु
त्रैलोक्यमूलविभुजेषु भुजेषु दर्पः॥ २४

तदा लक्ष्मणः रामस्य कर्णे लगित्वा पितृवधवैरस्मरणे अथ तद्भक्तिवीर्यपरीक्षणाय लक्षणविज्ञानायादिश्यतामङ्गदाय दूत्यम्। रामः साधु इति भणित्वा अङ्गदं सबहुमानमवलोक्य आदिशति॥ २५॥ अङ्गद! पिता ते यद्वाली बलिनि दशकण्ठे कलितवान्नशक्तास्तद्वक्तुं वयमपि मुदा तेन पुलकः।
स एव त्वं व्यावर्त्तयसि तनुजत्वेन पितृतां
ततः किं वक्तव्यं तिलकयति सृष्टार्थपदवीम्॥ २६

अङ्गदो मौलिमण्डलमिलत्करयुगलेन प्रणम्य यदाज्ञापयति देवः। अवधार्यताम्॥ २७॥
किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये
किं वा सैन्यमहं द्रुतं रघुपते तत्रैव सम्पादये।
अत्यल्पं कुलपर्वतैरविरलैर्बध्नामि वा सागरं
देवादेशय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम॥ २८

श्रीरामस्तद्वचनमात्रेणैव तद्भक्तिं सामर्थ्यं चावेक्ष्य वदति॥ २९॥

अज्ञानादथवाधिपत्यरभसा वास्मत्परोक्षे हृता
सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो यास्यसि॥ ३०

लक्ष्मण बोले—'भाई! कातर पुरुषोंके हृदयको अवलम्बन देनेवाले भाग्य या दैवसे क्या होनेवाला है? जबतक हमारी भ्रुकुटि रोषसे तनकर ललाटके ऊपरतक नहीं जाती और जबतक प्रत्यञ्चा धनुषके अग्रभागपर नहीं चढ़ती, तभीतक निशाचरराज रावणका दर्प त्रिभुवनका मूलोच्छेदन करनेवाली उसकी भुजाओंके भरोसे बढ़ता रहे'॥ २४॥

ऐसा विचार प्रकट करके लक्ष्मणने उसी समय भगवान् श्रीरामके कानमें मुँह लगाकर कहा—'अब इस समय इस बातकी परीक्षा तथा जानकारीके लिये कि यह अङ्गद अपने पिता वालीके वैरजनित वधका स्मरण करके भी आपमें कितनी भक्ति रखता है, इसमें कितना पराक्रम है तथा इसके अब कैसे लक्षण (रंग-ढंग) हैं, आप अङ्गदको पुनः दूतकर्म करनेका आदेश दीजिये।' श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा' कहकर अङ्गदकी ओर बड़े आदरसे देखकर उन्हें आदेश देने लगे—'अङ्गद! तुम्हारे पिता वालीने दशकण्ठ रावणके प्रति जो पुरुषार्थ किया था, उसका हम भी वर्णन नहीं कर सकते। उसकी याद आते ही हर्षके कारण हमारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है। वही वाली आज तुम्हारे रूपमें प्रकट है। तुम पुत्ररूपमें उत्पन्न हो, अपने पुरुषार्थसे पिताको भी पीछे छोड़ रहे हो; अतः तुम्हारे विषयमें क्या कहना है। तुम पुत्र-पदवीको मस्तकका तिलक बना रहे हो'॥ २५-२६॥

अङ्गदने अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़ भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—'जैसी आज्ञा; भगवान् इधर ध्यान दें। रघुपते! क्या मैं चहारदीवारी, विहार-स्थल और नगरद्वारसहित लङ्कापुरीको यहीं उठा लाऊँ? या अपनी सारी सेनाको ही उस पुरीमें आक्रमणके लिये पहुँचा दूँ? अथवा इस अत्यन्त तुच्छ सागरको अविरल कुलाचलोंद्वारा पाट दूँ? भगवन्! आज्ञा दीजिये, क्या करूँ? मेरे भुज-दण्डोंद्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है'॥ २७-२८॥

भगवान् रामने अङ्गदके कथनसे ही उनकी भक्ति और शक्तिका अनुमान लगाकर कहा—'वीर! तुम दशमुख रावणके पास जाकर कहो—'रावण! तुम अज्ञानसे या प्रभुत्वके अभिमानमें आकर हम लोगोंके पीठ-पीछे चोरकी भाँति जिस सीताको ले गये हो, उसे छोड़ दो; नहीं तो लक्ष्मणके छोड़े हुए बाणोंद्वारा बेधे जाकर छलकते हुए रक्तकी धाराओंसे छत्रकी भाँति दिगन्तको आच्छादित करके तुम अपने पुत्रोंके साथ ही यमपुरीको प्रस्थान करोगे'॥ २९-३०॥

अङ्गदः ॥ ३१ ॥ देव!

संधौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननी।
अक्षता वाक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति॥ ३२

तदा श्रीरामचन्द्रेण प्रशस्य प्रहितोऽङ्गदः।
उक्तिप्रत्युक्तिचातुर्यैः पराजित्यागतो रिपुम्॥ ३३

राघवस्य बलं ज्ञात्वा चारैस्तदनुजस्य च।
वानराणां च भीतोऽपि निर्भीरिव दशाननः॥ ३४

लङ्कापुरस्य रक्षार्थमादिदेश स राक्षसान्।
आदिश्य सर्वतो दिक्षु पुत्रानाह दशाननः॥ ३५

धूम्राक्षं धूम्रपानं च राक्षसा यात मे पुरीम्।
पाशैर्बध्नीत तौ मर्त्यौ अमित्रान्तकवीर्यवान्।
कुम्भकर्णोऽपि मद्भ्राता तुर्यनादैः प्रबोधितः॥ ३६

राक्षसाश्चैव संदिष्टा रावणेन महाबलाः।
तस्याज्ञां शिरसाऽऽदाय युयुधुर्वानरैः सह॥ ३७

युध्यमाना यथाशक्त्या कोटिसंख्यास्तु राक्षसाः।
वानरैर्निधनं प्राप्ताः पुनरन्यान् यथाऽऽदिशत्॥ ३८

पूर्वद्वारे दशग्रीवो राक्षसानमितौजसः।
ते चापि युध्य हरिभिर्नीलाद्यैर्निधनं गताः॥ ३९

अथ दक्षिणदिग्भागे रावणेन नियोजिताः।
ते सर्वे वानरवैर्दारितास्तु यमं गताः॥ ४०

पश्चिमेऽङ्गदमुख्यैश्च वानरैरतिगर्वितैः।
राक्षसाः पर्वताकाराः प्रापिता यमसादनम्॥ ४१

तदुत्तरे तु दिग्भागे रावणेन निवेशिताः।
पेतुस्ते राक्षसाः क्रूरा मैन्दाद्यैर्वानरैर्हताः॥ ४२

ततो वानरसङ्घास्तु लङ्काप्राकारमुच्छ्रितम्।
उत्प्लुत्याभ्यन्तरस्थांश्च राक्षसान् बलदर्पितान्॥ ४३

अङ्गदने कहा—'देव! मुझ दूतके रहते हुए रावण संधि करे या विग्रह, दोनों ही अवस्थाओंमें उसके दसों मस्तक पृथ्वीतलपर गिरकर लोटेंगे। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होगा कि संधि कर लेनेपर उसके मस्तक बिना कटे ही (आपके सामने प्रणामके लिये) गिरेंगे और विग्रह करनेपर कटकर गिरेंगे।' तब श्रीरामचन्द्रजीने अङ्गदकी प्रशंसा करके उन्हें भेजा और वे भी वहाँ जा, वाद-प्रतिवादकी चातुरीसे शत्रुको हराकर लौट आये॥ ३१—३३॥

दशानन रावणने भी अपने गुप्तचरोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीका, उनके भाई लक्ष्मणका और वानरोंका बल जानकर भयभीत होनेपर भी निडरकी भाँति लङ्कापुरीकी रक्षाके लिये राक्षसोंको आज्ञा दी। सम्पूर्ण दिशाओंमें राक्षसोंको जानेकी आज्ञा दे उसने अपने पुत्रोंसे और धूम्राक्ष तथा धूम्रपानसे भी कहा—'राक्षसो! तुम लोग नगरमें जाओ और उन दोनों मनुष्य-कुमारोंको पाशसे बाँध लाओ। शत्रुओंके लिये यमराजके समान पराक्रमी मेरा भाई कुम्भकर्ण भी इस समय वाद्योंके शब्दसे जगा लिया गया है॥ ३४—३६॥

इतना ही नहीं, रावणने बड़े बलवान्-बलवान् राक्षसोंको युद्धके लिये आदेश दिया और वे भी उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर वानरोंके साथ जूझने लगे। अपनी शक्तिभर युद्ध करते हुए करोड़ों राक्षस वानरोंके हाथ मारे गये। और-तो-और, दशमुख रावणने जिन दूसरे-दूसरे अपार-तेजस्वी राक्षसोंको पूर्वद्वारपर युद्धके लिये आदेश किया था, वे सब भी नील आदि वानरोंसे युद्ध करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए। इसके बाद रावणने दक्षिण दिशामें लड़नेके लिये जिन राक्षसोंको नियुक्त किया था, वे भी श्रेष्ठ वानरोंद्वारा अपने अङ्गोंके विदीर्ण कर दिये जानेपर यमलोकको चले गये। फिर पश्चिम द्वारपर जो पर्वताकार राक्षस थे, वे भी अत्यन्त गर्वीले अङ्गदादि वानर वीरोंद्वारा यमपुरीको पहुँचा दिये गये। फिर उत्तर द्वारपर रावणके द्वारा ठहराये हुए क्रूर राक्षस मैन्द आदि वानरोंके हाथ मारे जाकर धराशायी हो गये। तदनन्तर वानरगण लङ्काकी ऊँची चहारदीवारी फाँदकर उसके भीतर रहनेवाले

हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ताः स्वसेनामेव वानराः।
एवं हतेषु सर्वेषु राक्षसेषु दशाननः॥ ४४

रोदमानासु तत्स्त्रीषु निर्गतः क्रोधमूर्च्छितः।
द्वारे स पश्चिमे वीरो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः॥ ४५

क्वासौ रामेति च वदन् धनुष्पाणिः प्रतापवान्।
रथस्थः शरवर्षं च विसृजन् वानरेषु सः॥ ४६

ततस्तद्बाणछिन्नाङ्गा वानरा दुद्रुवुस्तदा।
पलायमानांस्तान् दृष्ट्वा वानरान् राघवस्तदा॥ ४७

कस्मात्तु वानरा भग्नाः किमेषां भयमागतम्।
इति रामवचः श्रुत्वा प्राह वाक्यं विभीषणः॥ ४८

शृणु राजन् महाबाहो रावणो निर्गतोऽधुना।
तद्बाणछिन्ना हरयः पलायन्ते महामते॥ ४९

इत्युक्तो राघवस्तेन धनुरुद्यम्य रोषितः।
ज्याघोषतलघोषाभ्यां पूरयामास खं दिशः॥ ५०

युयुधे रावणेनाथ रामः कमललोचनः।
सुग्रीवो जाम्बवांश्चैव हनूमानङ्गदस्तथा॥ ५१

विभीषणो वानराश्च लक्ष्मणश्चापि वीर्यवान्।
उपेत्य रावणीं सेनां वर्षन्तीं सर्वसायकान्॥ ५२

हस्त्यश्वरथसंयुक्तां ते निजघ्नुर्महाबलाः।
रामरावणयोर्युद्धमभूत् तत्रापि भीषणम्॥ ५३

रावणेन विसृष्टानि शस्त्रास्त्राणि च यानि वै।
तानि छित्त्वाथ शस्त्रैस्तु राघवश्च महाबलः॥ ५४

शरेण सारथिं हत्वा दशभिश्च महाहयान्।
रावणस्य धनुश्छित्त्वा भल्लेनैकेन राघवः॥ ५५

मुकुटं पञ्चदशभिश्छित्त्वा तन्मस्तकं पुनः।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिः शरैर्विव्याध वीर्यवान्॥ ५६

तदा दशास्यो व्यथितो रामबाणैर्भृशं तदा।
विवेश मन्त्रिभिर्नीतः स्वपुरीं देवमर्दकः॥ ५७

बलाभिमानी राक्षसोंका भी संहार करके पुनः शीघ्रतापूर्वक अपनी सेनामें लौट आये॥ ३७—४३½॥

इस प्रकार सब राक्षसोंके मारे जानेपर उनकी स्त्रियोंको रोदन करते देख दशानन रावण क्रोधसे मूर्च्छित होकर निकला। वह प्रतापी वीर हाथमें धनुष ले बहुसंख्यक राक्षसोंसे घिरा हुआ पश्चिम द्वारपर आया और बोला—'कहाँ है वह राम?' तथा रथपर बैठे-बैठे वानरोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके बाणोंसे अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वानर इधर-उधर भागने लगे। उस समय वानरोंको भागते देख श्रीरामने पूछा—'वानरोंमें क्यों भगदड़ पड़ गयी है? इनपर कौन-सा भय आ पहुँचा?'॥ ४४—४७½॥

श्रीरामकी बात सुनकर विभीषणने कहा—'राजन्! महाबाहो! सुनिये, इस समय रावण युद्धके लिये निकला है। महामते! उसीके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो वानरगण भाग रहे हैं'॥ ४८-४९॥

विभीषणके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कुपित होकर धनुष उठाया और प्रत्यञ्चाकी टंकारसे समस्त दिशाओं तथा आकाशको गुँजा दिया। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी रावणसे युद्ध करने लगे और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनूमान्, अङ्गद, विभीषण, पराक्रमी लक्ष्मण तथा अन्यान्य महाबली वानर पहुँचकर हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त रावणकी चतुरङ्गिणी सेनाको, जो सब प्रकारके बाणोंकी वर्षा कर रही थी, मारने लगे। वहाँ भी श्रीराम और रावणका युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ। रावण जिन-जिन अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करता था, उन सबका बाणोंद्वारा छेदन करके महाबली श्रीरामचन्द्रजीने एक बाणसे सारथिको तथा दस बाणोंसे उसके बड़े-बड़े घोड़ोंको धराशायी करके एक भल्ल नामक बाणद्वारा रावणके धनुषको भी काट डाला। फिर महान् पराक्रमी रामने पंद्रह बाणोंसे उसके मुकुट बेधकर सुवर्णकी पाँखवाले दस बाणोंसे उसके मस्तकोंको भी बेध दिया। उस समय देवताओंका मान-मर्दन करनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गया और मन्त्रियोंद्वारा ले जाया जाकर वह अपनी पुरी लङ्काको लौट गया॥ ५०—५७॥

बोधितस्तूर्यनादैस्तु गजयूथक्रमैः शनैः।
पुनः प्राकारमुल्लङ्घ्य कुम्भकर्णो विनिर्गतः॥ ५८

उत्तुङ्गस्थूलदेहोऽसौ भीमदृष्टिर्महाबलः।
वानरान् भक्षयन् दुष्टो विचचार क्षुधान्वितः॥ ५९

तं दृष्ट्वोत्पत्य सुग्रीवः शूलेनोरस्यताडयत्।
कर्णद्वयं कराभ्यां तु च्छित्त्वा वक्त्रेण नासिकाम्॥ ६०

सर्वतो युध्यमानांश्च रक्षोनाथान् रणेऽधिकान्।
राघवो घातयित्वा तु वानरेन्द्रैः समन्ततः॥ ६१

चकर्त विशिखैस्तीक्ष्णैः कुम्भकर्णस्य कन्धराम्।
विजित्येन्द्रजितं साक्षाद्गरुडेनागतेन सः॥ ६२

रामो लक्ष्मणसंयुक्तः शुशुभे वानरैर्वृतः।
व्यर्थं गते चेन्द्रजिति कुम्भकर्णे निपातिते॥ ६३

लङ्कानाथस्ततः क्रुद्धः पुत्रं त्रिशिरसं पुनः।
अतिकायमहाकायौ देवान्तकनरान्तकौ॥ ६४

यूयं हत्वा तु पुत्राद्या तौ नरौ युधि निघ्नत।
तान्नियुज्य दशग्रीवः पुत्रानेवं पुनर्ब्रवीत्॥ ६५

महोदरमहापार्श्वौ सार्धमेतैर्महाबलैः।
संग्रामेऽस्मिन् रिपून् हन्तुं युवां व्रजतमुद्यतौ॥ ६६

दृष्ट्वा तानागतांश्चैव युध्यमानान् रणे रिपून्।
अनयल्लक्ष्मणः षड्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्यमालयम्॥ ६७

वानराणां समूहश्च शिष्टांश्च रजनीचरान्।
सुग्रीवेण हतः कुम्भो राक्षसो बलदर्पितः॥ ६८

निकुम्भो वायुपुत्रेण निहतो देवकण्टकः।
विरूपाक्षं युध्यमानं गदया तु विभीषणः॥ ६९

भीममैन्दौ च श्वपतिं वानरेन्द्रौ निजघ्नतुः।
अङ्गदो जाम्बवांश्चाथ हरयोऽन्यान्निशाचरान्॥ ७०

युध्यमानस्तु समरे महालक्षं महाचलम्।
जघान रामोऽथ रणे बाणवृष्टिकरं नृप॥ ७१

तदनन्तर वाद्योंके घोषसे जगाया गया कुम्भकर्ण लङ्काके परकोटेको लाँघकर धीरे-धीरे गजसमूहकी-सी मन्द गतिसे बाहर निकला। उसका शरीर बहुत ही ऊँचा और मोटा था, आँखें बड़ी ही भयानक थीं। वह महाबली दुष्ट राक्षस भूखसे व्याकुल हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा। उसे देख सुग्रीवने उछलकर उसकी छातीमें शूलसे प्रहार किया तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों कानोंको और मुखसे उसकी नासिकाको काट लिया॥ ५८—६०॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने रणमें सब ओर युद्ध करते हुए बहुसंख्यक राक्षसाधिपतियोंको चारों ओरसे वानरोंद्वारा मरवाकर अपने तीखे बाणोंसे कुम्भकर्णका भी गला काट लिया। फिर वहाँ आये हुए साक्षात् गरुडके द्वारा इन्द्रजित्को भी जीतकर वानरोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसहित बड़ी शोभा पाने लगे। इन्द्रजित्का उद्योग व्यर्थ होने और कुम्भकर्णके मारे जानेपर लङ्कापति रावणने क्रुद्ध हो अपने पुत्र त्रिशिरा, अतिकाय, महाकाय, देवान्तक और नरान्तकसे कहा—'पुत्रवरो! तुम उन दोनों मनुष्यों—राम और लक्ष्मणको युद्धमें मार डालो।' इस प्रकार उन पुत्रोंको ऐसी आज्ञा दे दशकण्ठ रावणने पुनः महोदर और महापार्श्व नामक राक्षसोंसे कहा—'तुम दोनों इस संग्राममें शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हो बहुत बड़ी सेनाओंके साथ जाओ'॥ ६१—६६॥

रणभूमिमें उपर्युक्त शत्रुओंको आकर युद्ध करते देख लक्ष्मणने छः तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें यमलोक भेज दिया। इसके बाद वानरगणने शेष राक्षसोंको मार डाला। सुग्रीवने बलाभिमानी कुम्भ नामक राक्षसको मारा, हनुमान्जीने देवताओंके लिये कण्टकरूप निकुम्भका वध किया। युद्ध करते हुए विरूपाक्षको विभीषणने गदासे मार डाला। वानरश्रेष्ठ भीम और मैन्दने श्वपतिका संहार किया, अङ्गद और जाम्बवान् तथा अन्य वानरोंने दूसरे निशाचरोंका संहार किया। नरेश्वर! युद्धमें लगे हुए श्रीरामचन्द्रजीने भी संग्रामभूमिमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले महालक्ष और महाचल नामक राक्षसोंको मौतके घाट उतार दिया॥ ६७—७१॥

इन्द्रजिन्मन्त्रलब्धं तु रथमारुह्य वै पुनः।
वानरेषु च सर्वेषु शरवर्षं ववर्ष सः॥ ७२

रात्रौ तद्वाणभिन्नं तु बलं सर्वं च राघवम्।
निश्चेष्टमखिलं दृष्ट्वा जाम्बवत्प्रेरितस्तदा॥ ७३

वीर्यादौषधमानीय हनूमान् मारुतात्मजः।
भूम्यां शयानमुत्थाप्य रामं हरिगणांस्तथा॥ ७४

तैरेव वानरैः सार्धं ज्वलितोल्काकरैर्निशि।
दाहयामास लङ्कां तां हस्त्यश्वरथरक्षसाम्॥ ७५

वर्षन्तं शरजालानि सर्वदिक्षु घनो यथा।
स भ्रात्रा मेघनादं तं घातयामास राघवः॥ ७६

घातितेष्वथ रक्षस्सु पुत्रमित्रादिबन्धुषु।
कारितेष्वथ विघ्नेषु होमजप्यादिकर्मणाम्॥ ७७

ततः क्रुद्धो दशग्रीवो लङ्काद्वारे विनिर्गतः।
क्वासौ राम इति ब्रूते मानुषस्तापसाकृतिः॥ ७८

योद्धा कपिबलीत्युच्चैर्व्याहरद्राक्षसाधिपः।
वेगवद्भिर्विनीतैश्च अश्वैश्चित्ररथे स्थितः॥ ७९

अथायान्तं तु तं दृष्ट्वा रामः प्राह दशाननम्।
रामोऽहमत्र दुष्टात्मन्नेहि रावण मां प्रति॥ ८०

इत्युक्ते लक्ष्मणः प्राह रामं राजीवलोचनम्।
अनेन रक्षसा योत्स्ये त्वं तिष्ठेति महाबल॥ ८१

ततस्तु लक्ष्मणो गत्वा रुरोध शरवृष्टिभिः।
विंशद्बाहुविसृष्टैस्तु शस्त्रास्त्रैर्लक्ष्मणं युधि॥ ८२

रुरोध स दशग्रीवः तयोर्युद्धमभून्महत्।
देवा व्योम्नि विमानस्था वीक्ष्य तस्थुर्महाहवम्॥ ८३

ततो रावणशस्त्राणिच्छित्त्वा स्वैस्तीक्ष्णसायकैः।
लक्ष्मणः सारथिं हत्वा तस्याश्वानपि भल्लकैः॥ ८४

तत्पश्चात् इन्द्रजित् मन्त्रशक्तिसे प्राप्त हुए रथपर आरूढ़ हो समस्त वानरोंपर बाण-वृष्टि करने लगा। रात्रिके समय समस्त वानर-सेना तथा श्रीरामचन्द्रजीको मेघनादके बाणोंसे विद्ध हो सर्वथा निश्चेष्ट पड़े देख पवनकुमार हनूमान्‌जी जाम्बवान्‌के द्वारा प्रेरित हो अपने पराक्रमसे औषध ले आये। उन्होंने उस औषधके प्रभावसे भूमिपर पड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी तथा वानरगणोंको उठाया और प्रज्वलित उल्का हाथमें लिये उन्हीं वानरोंके साथ रातमें जाकर हाथी, रथ और घोड़ोंसे युक्त राक्षसोंकी लङ्कामें आग लगा दी। तदनन्तर भगवान् रामने बादलके समान समस्त दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए मेघनादका अपने भाई लक्ष्मणके द्वारा वध करा दिया॥ ७२—७६॥

इस प्रकार जब पुत्र-मित्रादि समस्त राक्षस-बन्धु मारे गये तथा होम-जप आदि अभिचार-कर्मोंमें वानरोंद्वारा विघ्न डाल दिया गया, तब कुपित हो दशशीश रावण वेगशाली सुशिक्षित अश्वोंसे युक्त विचित्र रथमें बैठकर लङ्काके द्वारपर निकल आया और कहने लगा—'तपस्वीका वेष बनाये वह मनुष्य राम कहाँ है, जो वानरोंके बलपर योद्धा बना हुआ है?' राक्षसराज रावणने यह बात बड़े जोरोंसे कही। यह सुन भगवान् रामने दशानन रावणको आते देख उससे कहा—'दुष्टात्मा रावण! मैं ही राम हूँ और यहाँ खड़ा हूँ, तू मेरी ओर चला आ'॥ ७७—८०॥

उनके यों कहनेपर लक्ष्मणने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबल! आप अभी ठहरें, मैं इस राक्षसके साथ युद्ध करूँगा।' तदनन्तर लक्ष्मणने आगे बढ़कर बाणोंकी वृष्टिसे रावणको ढक दिया। फिर दशग्रीव रावणने भी अपनी बीस भुजाओंद्वारा छोड़े हुए शस्त्रास्त्रोंसे लक्ष्मणको संग्राममें आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ। विमानपर आरूढ़ देवतागण इस महान् संग्रामको देख [कौतूहलवश] आकाशमें स्थित हो गये॥ ८१—८३॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंद्वारा रावणके अस्त्र-शस्त्र काटकर उसके सारथिको मार डाला और भल्ल नामक बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी नष्ट कर दिया।

रावणस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं च निशितैः शरैः।
वक्षःस्थलं महावीर्यो विव्याध परवीरहा॥ ८५

ततो रथान्निपत्याधः क्षिप्रं राक्षसनायकः।
शक्तिं जग्राह कुपितो घण्टानादविनादिनीम्॥ ८६

अग्निज्वालाज्वलज्जिह्वां महोल्कासदृशद्युतिम्।
दृढमुष्ट्या तु निक्षिप्ता शक्तिः सा लक्ष्मणोरसि॥ ८७

विदार्यान्तःप्रविष्टाथ देवास्त्रस्तास्ततोऽम्बरे।
लक्ष्मणं पतितं दृष्ट्वा रुदद्भिर्वानरेश्वरैः॥ ८८

दुःखितः शीघ्रमागम्य तत्पार्श्वं प्राह राघवः।
क्व गतो हनुमान् वीरो मित्रो मे पवनात्मजः॥ ८९

यदि जीवति मे भ्राता कथंचित्पतितो भुवि।
इत्युक्ते हनुमान् राजन् वीरो विख्यातपौरुषः॥ ९०

बद्ध्वाञ्जलिं बभाषेदं देह्यनुज्ञां स्थितोऽस्मि भोः।
रामः प्राह महावीर विशल्यकरणी मम॥ ९१

अनुजं विरुजं शीघ्रं कुरु मित्र महाबल।
ततो वेगात्समुत्पत्य गत्वा द्रोणगिरिं कपिः॥ ९२

बद्ध्वा च शीघ्रमानीय लक्ष्मणं नीरुजं क्षणात्।
चकार देवदेवेशां पश्यतां राघवस्य च॥ ९३

ततः क्रुद्धो जगन्नाथो रामः कमललोचनः।
रावणस्य बलं शिष्टं हस्त्यश्वरथराक्षसम्॥ ९४

हत्वा क्षणेन रामस्तु तच्छरीरं तु सायकैः।
तीक्ष्णैर्जर्जरितं कृत्वा तस्थिवान् वानरैर्वृतः॥ ९५

अस्तचेष्टो दशग्रीवः संज्ञां प्राप्य शनैः पुनः।
उत्थाय रावणः क्रुद्धः सिंहनादं ननाद च॥ ९६

तन्नादश्रवणैर्व्योम्नि वित्रस्तो देवतागणः।
एतस्मिन्नेव काले तु रामं प्राप्य महामुनिः॥ ९७

फिर तीखे बाणोंसे रावणका धनुष और उसकी ध्वजा काटकर शत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले महान् पराक्रमी लक्ष्मणजीने उसके वक्षःस्थलको बेध दिया। तब राक्षसराज रावण रथसे नीचे गिर पड़ा। किंतु शीघ्र ही उठकर कुपित हो उसने हाथमें शक्ति उठायी, जो सैकड़ों घड़ियालोंके समान आवाज करनेवाली थी। उसकी धार अग्निकी ज्वालाके समान प्रज्वलित थी तथा उसकी कान्ति महती उल्काके समान प्रतीत होती थी। उसने दृढ़तापूर्वक मुट्ठी बाँधकर उस शक्तिको लक्ष्मणकी छातीपर फेंका। वह शक्ति उनकी छाती छेदकर भीतर घुस गयी। इससे आकाशमें स्थित देवतागण भयभीत हो गये। लक्ष्मणको गिरा देख रोते हुए वानराधिपतियोंके साथ दुःखी हो भगवान् श्रीराम शीघ्र ही उनके पास आये और कहने लगे—'मेरे मित्र पवनकुमार हनुमान् कहाँ चले गये? पृथ्वीपर पड़ा हुआ मेरा भाई लक्ष्मण जिस-किसी प्रकार भी जीवित हो सके, वह उपाय होना चाहिये'॥ ८४—८९½॥

राजन्! उनके इस प्रकार कहनेपर, विख्यात पराक्रमी वीर हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर बोले—'देव! आज्ञा दें, मैं सेवामें उपस्थित हूँ'॥ ९०½॥

श्रीरामने कहा—'महावीर! मुझे 'विशल्यकरणी' ओषधि चाहिये। महाबली! उसे लाकर मेरे भाईको शीघ्र ही नीरोग करो॥ ९१½॥

तब हनुमान्‌जी बड़े वेगसे उछले और द्रोणगिरिपर जाकर शीघ्र ही वहाँसे दवा बाँधकर ले आये और उसका प्रयोग करके देवदेवेश्वरों तथा रामचन्द्रजीके देखते-देखते क्षणभरमें लक्ष्मणको नीरोग कर दिया॥ ९२-९३॥

तदनन्तर जगदीश्वर कमलनयन श्रीराम बहुत ही कुपित हुए और रावणकी बची हुई सेनाको हाथी, घोड़े, रथ तथा राक्षसोंसहित क्षणभरमें मार गिराया। उन्होंने तीखे बाणोंसे रावणका शरीर जर्जर कर दिया और रणभूमिमें वानरोंसे घिरे हुए खड़े रहे। रावण निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा। फिर धीरे-धीरे होशमें आनेपर वह उठकर कुपित हो सिंहनाद करने लगा। उसकी गर्जना सुनकर आकाशवर्ती देवतालोग दहल गये॥ ९४—९६½॥

इसी समय रावणके प्रति वैर बाँधे महामुनि अगस्त्य श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और शत्रुओंपर विजय

रावणे बद्धवैरस्तु अगस्त्यो वै जयप्रदम्।
आदित्यहृदयं नाम मन्त्रं प्रादाज्जयप्रदम्॥ ९८

रामोऽपि जप्त्वा तन्मन्त्रमगस्त्योक्तं जयप्रदम्।
तद्दत्तं वैष्णवं चापमतुलं सद्गुणं दृढम्॥ ९९

पूजयित्वा तदादाय सज्यं कृत्वा महाबलः।
सौवर्णपुङ्खैस्तीक्ष्णैस्तु शरैर्मर्मविदारणैः॥ १००

युयुधे राक्षसेन्द्रेण रघुनाथः प्रतापवान्।
तयोस्तु युध्यतोस्तत्र भीमशक्त्योर्महामते॥ १०१

परस्परविसृष्टस्तु व्योम्नि संवर्द्धितोऽनलः।
समुत्थितो नृपश्रेष्ठ रामरावणयोर्युधि॥ १०२

संगरे वर्तमाने तु रामो दाशरथिस्तदा।
पदातिर्युयुधे वीरो रामोऽनुक्तपराक्रमः॥ १०३

सहस्राश्वयुतं दिव्यं रथं मातलिमेव च।
प्रेषयामास देवेन्द्रो महान्तं लोकविश्रुतम्॥ १०४

रामस्तं रथमारुह्य पूज्यमानः सुरोत्तमैः।
मातल्युक्तोपदेशस्तु रामचन्द्रः प्रतापवान्॥ १०५

ब्रह्मदत्तवरं दुष्टं ब्रह्मास्त्रेण दशाननम्।
जघान वैरिणं क्रूरं रामदेवः प्रतापवान्॥ १०६

रामेण निहते तत्र रावणे सगणे रिपौ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वाः परस्परमथाब्रुवन्॥ १०७

रामो भूत्वा हरिर्यस्मादस्माकं वैरिणं रणे।
अन्यैरवध्यमप्येनं जघान युधि रावणम्॥ १०८

तस्मात्तं रामनामानमनन्तमपराजितम्।
पूजयामोऽवतीर्यैनमित्युक्त्वा ते दिवौकसः॥ १०९

नानाविमानैः श्रीमद्भिरवतीर्य महीतले।
रुद्रेन्द्रवसुचन्द्राद्या विधातारं सनातनम्॥ ११०

विष्णुं जिष्णुं जगन्मूर्तिं सानुजं राममव्ययम्।
तं पूजयित्वा विधिवत्परिवार्योपतस्थिरे॥ १११

रामोऽयं दृश्यतां देवा लक्ष्मणोऽयं व्यवस्थितः।
सुग्रीवो रविपुत्रोऽयं वायुपुत्रोऽयमग्रतः॥ ११२

दिलानेवाले 'आदित्यहृदय' नामक स्तोत्र-मन्त्रका उपदेश किया। महाबली श्रीरामचन्द्रजीने भी अगस्त्यमुनिके बताये हुए उस विजयदायक मन्त्रका जप करके उनके द्वारा अर्पित किये गये उत्तम डोरीवाले, सुदृढ़ एवं अनुपम वैष्णव-धनुषको सादर ग्रहण किया और उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। फिर प्रतापी रघुनाथजी शत्रुओंका मर्म-भेदन करनेमें समर्थ सोनेकी पाँखवाले तीक्ष्ण बाणोंद्वारा राक्षसराज रावणके साथ युद्ध करने लगे॥ ९७—१००½॥

महामते! नृपश्रेष्ठ! उन दोनों भयंकर शक्तिवाले श्रीराम और रावणके परस्पर युद्ध करते समय एक-दूसरेपर छोड़ी हुई अग्निकी ज्वाला उठ-उठकर वहाँ आकाशमें फैलने लगी। इस वर्तमान संग्राममें अवर्णनीय पराक्रमवाले वीर दशरथनन्दन श्रीराम पैदल ही युद्ध कर रहे थे। यह देख देवराज इन्द्रने अपने सारथि मातलिसहित एक महान् लोकविख्यात दिव्य रथ भेजा, जिसमें एक हजार घोड़े जुते थे। प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवोंद्वारा प्रशंसित होकर उस रथपर आरूढ़ हुए और मातलिके उपदेशसे उस दुष्ट दशाननका, जिसे ब्रह्माजीने वरदान दिया था, ब्रह्मास्त्रद्वारा वध किया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् श्रीरामने अपने क्रूर वैरी रावणका संहार किया॥ १०१—१०६॥

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शत्रु रावणका उसके गणोंसहित वध हो जानेपर इन्द्र आदि सभी देवता परस्पर कहने लगे—"साक्षात् भगवान् विष्णुने ही श्रीरामावतार लेकर हमारे वैरी रावणका, जो दूसरोंके लिये अवध्य था, युद्धमें वध किया है। इसलिये हम लोग आकाशसे उतरकर इन अनन्त पराक्रमी तथा किसीसे भी पराजित न होनेवाले 'श्रीराम' नामक परमेश्वरकी पूजा करें।" ऐसी सम्मति करके वे रुद्र, इन्द्र, वसु और चन्द्र आदि देवतागण अनेक कान्तिमान् विमानोंद्वारा पृथ्वीपर उतरे। वे जगत्के रचयिता, विश्वमूर्ति, सनातन पुरुष, विजयशील भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत अविनाशी परमात्मा श्रीरामका लक्ष्मणसहित विधिवत् पूजन करके उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ १०७—१११॥

सब देवता परस्पर कहने लगे—'देवगण! देखो—ये श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये लक्ष्मणजी खड़े हैं, ये सूर्यनन्दन सुग्रीव हैं, ये वायुनन्दन हनुमान्‌जी खड़े हैं और ये

अङ्गदाद्या इमे सर्वे इत्यूचुस्ते दिवौकसः।
गन्धामोदितदिक्चक्रा भ्रमरालिपदानुगा॥ ११३

देवस्त्रीकरनिर्मुक्ता राममूर्धनि शोभिता।
पपात पुष्पवृष्टिस्तु लक्ष्मणस्य च मूर्धनि॥ ११४

ततो ब्रह्मा समागत्य हंसयानेन राघवम्।
अमोघाख्येन स्तोत्रेण स्तुत्वा राममवोचत॥ ११५

ब्रह्मोवाच

त्वं विष्णुरादिर्भूतानामनन्तो ज्ञानदृक्प्रभुः।
त्वमेव शाश्वतं ब्रह्म वेदान्ते विदितं परम्॥ ११६

त्वया यदद्य निहतो रावणो लोकरावणः।
तदाशु सर्वलोकानां देवानां कर्म साधितम्॥ ११७

इत्युक्ते पद्मयोनौ तु शङ्करः प्रीतिमास्थितः।
प्रणम्य रामं तस्मै तं भूयो दशरथं नृपम्॥ ११८

दर्शयित्वा गतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन्।
ततो बाहुबलप्राप्तं विमानं पुष्पकं शुभम्॥ ११९

पूतामारोप्य सीतां तामादिष्टः पवनात्मजः।
ततस्तु जानकीं देवीं विशोकां भूषणान्विताम्॥ १२०

वन्दितां वानरेन्द्रैस्तु सार्धं भ्रात्रा महाबलः।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्ये स राघवः॥ १२१

लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शम्भोरनुग्रहात्।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक्॥ १२२

तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति।
रामस्तीर्णप्रतिज्ञोऽसौ भरतासक्तमानसः॥ १२३

ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः।
अभिषिक्तो वसिष्ठाद्यैर्भरतेन प्रसादितः।
अकरोद्धर्मतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान्॥ १२४

अङ्गद आदि सभी वानर वीर विराजमान हैं।' तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मस्तकपर देवाङ्गनाओं-के हाथसे छोड़े गये फूलोंकी वर्षा हुई। उस समय वहाँकी सब दिशाएँ उन दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित हो रही थीं और उन पुष्पोंपर भ्रमरगण मँड़रा रहे थे॥ ११२—११४॥

तदनन्तर ब्रह्माजी हंसकी सवारीसे वहाँ आये और 'अमोघ' नामक स्तोत्रसे भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके तब उनसे बोले॥ ११५॥

ब्रह्माजीने कहा—आप समस्त प्राणियोंके आदिकारण, अविनाशी, ज्ञानदृष्टि भगवान् विष्णु हैं; आप ही वेदान्त-विख्यात सनातन परब्रह्म हैं। आपने आज जो सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया है, इससे समस्त लोकों तथा देवताओंका भी कार्य सद्यः सिद्ध हो गया॥ ११६-११७॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवान् शङ्करने भी पहले श्रीरामचन्द्रजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हें राजा दशरथका दर्शन कराया। उसके बाद यह कहकर कि 'श्रीसीताजी निष्कलङ्क और शुद्ध चरित्रवाली हैं'—भगवान् शंकर चले गये॥ ११८½॥

तदनन्तर पवित्रात्मा सीताजीको अपने बाहुबलसे प्राप्त सुन्दर पुष्पकविमानपर चढ़ाकर भगवान्ने हनुमान्जी-को चलनेका आदेश दिया। तब समस्त वानरेन्द्रोंद्वारा वन्दित शोकरहित जानकीदेवीको आभूषणोंसे विभूषितकर महाबली रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणके साथ चले। लौटती बार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके पुलपर महादेवजीकी स्थापना की और शङ्करजीकी कृपासे उन्होंने उन शिवजीमें परमभक्ति प्राप्त की। वहाँ स्थापित हुए पिनाकधारी महादेवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। उनके दर्शनमात्र-से शिवजी सब प्रकारके हत्यादि दोषोंको दूर कर देते हैं॥ ११९—१२२½॥

इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके श्रीरामचन्द्रजी अपना चित्त भरतजीकी ओर लगा रहनेके कारण वहाँसे दिव्यपुरी अयोध्याको गये। फिर भरतजीके मनानेपर श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठ आदि उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा अपना राज्याभिषेक कराया। तत्पश्चात् प्रतापी भगवान् श्रीरामने चिरकालतक

यज्ञादिकं कर्म निजं च कृत्वा
पौरैस्तु रामो दिवमारुरोह।
राजन्मया ते कथितं समासतो
रामस्य भूम्यां चरितं महात्मनः।
इदं सुभक्त्या पठतां च शृण्वतां
ददाति रामः स्वपदं जगत्पतिः॥ १२५

धर्मपूर्वक राज्य किया तथा राजोचित यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करके वे पुरवासीजनोंके साथ ही स्वर्गलोक (साकेतधाम)-को चले गये। राजन्! पृथ्वीपर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके किये हुए चरित्रोंका मैंने तुमसे संक्षेपतः वर्णन किया। जो लोग इसको भक्तिपूर्वक पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें जगत्पति भगवान् श्रीराम अपना धाम प्रदान करते हैं॥ १२३—१२५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे रामप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५२॥
इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें श्रीरामावतारकी कथाविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावद्वयं शुभम्।
तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समासतः॥ १

पुरा ह्यसुरभारार्ता मही प्राह नृपोत्तम।
आसीनं देवमध्ये तु ब्रह्माणं कमलासनम्॥ २

देवासुरे हता ये तु विष्णुना दैत्यदानवाः।
ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्भव॥ ३

तद्भूरिभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन।
मम तद्भारहानिः स्याद्यथा देव तथा कुरु॥ ४

तयैवमुक्तो ब्रह्माथ देवैः सह जगाम ह।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविबोधितम्॥ ५

तत्र गत्वा जगत्स्रष्टा देवैः सार्धं जनार्दनम्।
नरसिंहं महादेवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ६

अभ्यर्च्य भक्त्या गोविन्दं वाक्पुष्पेण च केशवम्।
पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः॥ ७

राजोवाच

वाक्पुष्पेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माप्यर्चितवान् हरिम्।
तन्मे कथय विप्रेन्द्र ब्रह्मोक्तं स्तोत्रमुत्तमम्॥ ८

मार्कण्डेयजी कहते हैं—अब मैं तीसरे राम (बलराम) और श्रीकृष्णके युगल अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालकी बात है, पृथ्वी दैत्योंके भारसे पीडित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान कमलासन ब्रह्माजीके पास गयी और इस प्रकार बोली॥ १-२॥

'कमलोद्भव! देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस आदि क्षत्रियोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। चतुरानन! उनके भारी बोझसे दबकर मैं बहुत दुःखी हो गयी हूँ। देव! मेरा वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें'॥ ३-४॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तर तटपर भगवान् विष्णुके निकट गये। उन्होंने भगवान्‌को अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतेसे जगाया था। वहाँ पहुँचकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ नरसिंहस्वरूप महान् देवता भगवान् जनार्दनकी गन्ध-पुष्पादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की। फिर वाक्पुष्पसे भी उन गोविन्द-केशवका पूजन किया। राजेन्द्र! इससे वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु उनपर बहुत संतुष्ट हुए॥ ५—७॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुकी वाक्पुष्पसे किस प्रकार पूजा की? विप्रेन्द्र! ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए उस उत्तम स्तोत्र (वाक्पुष्प)-को आप मुझे सुनाइये॥ ८॥